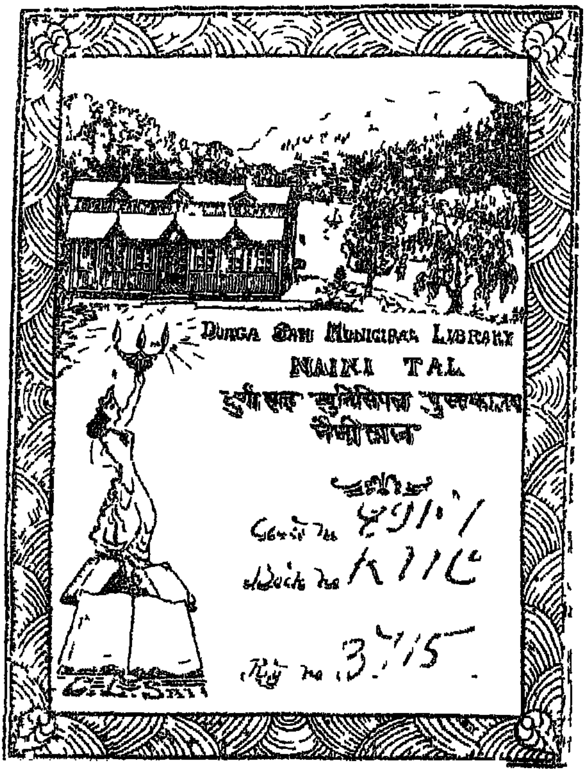

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

चकाचक

लेखक

'कुटिलेश'

मूल्य १॥)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्र बेरी।

हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय।

पो० बा० नं० ७० ज्ञानवापी।

बनारस।

मुद्रक—

पं० पुरुषोत्तमलाल दवे ऋषि,

आनन्द प्रेस।

आदिविश्वेश्वर चौक काशी।

समर्पण

सुदामाके ये तन्दुल कदाचित्
कोई स्वीकार न करे
इसलिए—
'अपने-आप'
को
ही
सा
द
र
समर्पित !
'कुटिलेश'

सीपों ! सीपों !!

देख लीजिये ! एक-एक पत्थर जोड़कर जैसे 'ठण्डी-सड़क' तैयार की थी, वैसेही घोंट-छानकर 'चकाचक' भी तैयार कर दी है। आवश्यकता क्या थी, यह पूछनेका कष्ट न कीजियेगा। एक पुस्तकसे न तो कभी लेखकको ही सन्तोष हुआ है और न पाठकों को ही।

अब सौंफ मिर्च, बादाम, पिस्ता, बूटी आदि-आदिमें कौन चीज कितनी मात्रामें है, इसे घोंट-छानकर भी मैं बतानेमें असमर्थ हूँ। अतः आप जमाकर स्वादसे जान लें। मनुष्यताके नाते कहिये तो इतना कह दूँ कि दूधिया ही छाननेकी चेष्टा की है।

'सिल-लोढ़ा' अथवा 'लोटा-गिलास' के दोषसे यदि स्वादमें कोई खराबी हो गई हो तो पियक्कड़-वृन्द क्षमा करें। आखें झपकियां ले रही हैं अतः मैं अधिक कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ।

'कुटिलेश'

लेख-सूची

चकाचक

सिल-लोढ़ा युद्ध

जिस लगनसे मैंने उनका मकान ढूँढ़ा था, सच कहता हूँ शायद मजनू लैलाका भी मकान न ढूँढ़ता। फिर भी जब गली मिल गयी, मकानका नम्बर ढूंढ़ लिया और भीतर जाकर बाराङ्ग-नाके कोठेपर चढ़नेवालोंकी-सी हसरतें लिये सीढ़ियां भी चढ़ गया तो कमरेमें ताला लटकता दिखाई पड़ा। क्रोध आना स्वाभाविक था 'पण्डितजी' नामसे पुकारे जानेवाले व्यक्तियोंपर मुझे इस जीव-नमें दूसरी बार क्रोध आया। पहिली बार मुझे उन पण्डितजी पर क्रोध आया था जिनके काशीके पञ्चाङ्गमें भी अभागा लिखा गया था और 'विवाह' द्वारा पत्नीपर 'सोल-राइट' प्राप्त कर लेनेपर भी 'मधुरमिलन' से अपने शब्दोंमें दो वर्ष और उनके शब्दोंमें केवल दो दिन वञ्चित रखा गया था।

फिर सबसे अधिक क्रोध तो उनकी उस 'लछमिनियां' नामकी कुतियापर आया जो उनकी ड्योढ़ीपर लेटी चौकसी कर रही थी। मुझे मालूम है कि पण्डितजी जब इसे लाये थे तो यह एक बड़े चूहेके बराबर थी और यद्यपि पण्डितजी 'शिशु-पालन' करनेवाली मातृ-जातिके न थे; परन्तु उन्होंने अपने आदर्श लालन-पालनसे इसे आज कुतिया बना दिया था और मुझे कहते हुए दुःख होता

है कि इसमें अभी तक अपने मालिकके दोस्तोंको पहिचाननेकी तमीज भी न आयी थी। जैसे ही मैं पहुँचा, पहिले तो पड़े ही पड़े एक बार गुर्रायी और फिर बिना विराम, अर्ध-विरामके एक ही सांसमें अपने कमीनेपन का राग अलापने लगी। भुक भुक भुक! भुक भुक भुक!

हां, तो वे यदि नहीं थे तो यह भी तो सम्भव था कि कोई जरूरी काम आ पड़ा हो और दस-पांच मिनटके लिये नीचे तक गये हों, यह सोचकर कदाचित मैं थोड़ी देर बैठकर 'इन्तजार' के मजे भी लेता, परन्तु आप स्वयं सोचिये अथवा किसी दूसरेसे सोचवाइये कि मेरा बैठना जिसकी कुतियाको भी न अच्छा लगे उसके दरवाजेपर मैं प्रतिष्ठित व्यक्ति किस प्रकार बैठता? मन ही मन पाँच गालियाँ ऊपर, एक-एक गाली एक एक सीढ़ीपर देता तथा पाँच गालियां घरके दरवाजेके पास देकर मैं बाहर निकल आया।

शिक्षित आदमियोंका समय कितना अमूल्य होता है यह किसी से छिपा नहीं है। मैंने विचार किया कि अब शीघ्रसे शीघ्र ट्राम पर सवार होकर घर पहुँचना चाहिये, परन्तु अफसोस! ट्राम भाड़ेके लिये पाकिटमें हाथ डाला तो पैसे नदारद। छिः छिः। कितना दूर है, जो ट्रामपर चढ़के आऊं! देश इसी प्रकार तो काहिल होता जा रहा है। 'पैदल चलनेसे स्वास्थ्य सुधरता है' वाक्यने तबियतको भड़काया तो मैं पैदल ही घरकी ओर बढ़ा।

अभी जितना रास्ता मैंने पार किया था गिनता तो पचीस कदमसे अधिक हर्गिज न निकलता कि सामनेसे श्री श्री १०८ अचलायतनजी पाण्डेय आते दिखाई पड़े। मैं खड़ा होकर यह देखने लगा कि देखें मेरे पास आते आते इनकी मृदुल मुसकान और चालमें किसका विकास श्लाघनीय है।

जब एकदम आकर सट गये तो मैंने पूछा—'पाण्डेयजी, आज सबेरे-सबेरे इधर कहां?'

—'आपके पण्डितजीने बुलाया था, उन्हींके पास जा रहा हूँ।'

—'हूं। पण्डितजीके यहां! भला पाण्डेयजी! पहिले यह तो बतलाइये कि जो आदमी लोगोंको मिलनेका वचन दे, घर तक दौड़ाये, और फिर भी नदारद मिले, तो क्या आप भी ऐसे असभ्य आदमीके यहाँ जाना स्वीकार करते हैं? मुझे भी बुलाया था। वहीं से आ भी रहा हूँ। वे तो क्या, उनका भूत भी घर पर न था। केवल एक कुतिया दरवाजे पर बैठी उनकी भलमंसीका परिचय दे रही है।'

—'हरे! हरे! इतना क्रोध क्यों? मालूम होता है, आप एकदम ऊपर ही चढ़े चले गये थे।'

'तब कहाँ जाता?' मैंने भूलका सा अनुभव करते हुए पूछा।

—'नीचे ही बगलके कमरेमें। भई! जबसे उनकी सहधर्मिणी देश चली गयी हैं, वे ऊपर कम बैठते हैं। बगलके बैठकखानेमें बैठते हैं। सबेरे तो वे कहीं जाते नहीं। लौटिये, लौटिये, मैं भेंट कराये देता हूँ।'

'मुझे बैठकखाने और कबूतरखानेका क्या पता! खैर! आप कहते हैं तो चलता हूँ।'

हम दोनों आदमी धीरे-धीरे उनकी बैठकके सामने आये लेकिन वहां भी जब ताला लटकता दिखाई पड़ा, तो पाण्डेयजी मेरे मुंहकी ओर देखने लगे। मैंने कहा—'देखिये पाण्डेयजी, जो आदमी इस संसारमें नहीं हैं, उसे चाहे मैं अकेले ढूँढ़ँ, चाहे आप मेरे साथ आकर ढूंढ़ें और चाहे खुफिया तैनात कीजिये, मिलना असम्भव है, कृपया इसे नोट कर लीजिये।'

कहनेका मतलब यह है कि हम दोनों ही आदमी लौट पड़े।

रास्तेमें पाण्डेयजीने कहा—'आइये घरपर चाय बनवायें, पी लीजिये और उधर ही 'जागवन्त' लेन होकर निकल जाइयेगा।'

—'कोई हर्ज नहीं।' कहकर मैं उनके साथ चल पड़ा।

अभी पाण्डेयजीके दरवाजे पर पहुंचा ही था कि उनको देखते ही उनके मुनुआने एक कागज का टुकड़ा उनके हाथों में दिया। दोनों ही आदमियोंने पढ़ा। लिखा था:—

"प्रिय पाण्डेयजी!

आपके दरवाजेपर बैठा लगभग आधा घन्टा तक आपकी राह देखता रहा, लेकिन न तो आप दिखाई पड़े और न कोई दूसरी ही दर्शनीय वस्तु दिखाई पड़ी। ऊबकर अब जा रहा हूं। काम आवश्यक है। कृपया पत्र पाते ही घरपर आ जाइयेगा। मैं वहीपर रहूँगा।

आपहीका सो:—

'गीताकिशोर शास्त्री',

बहुत मना किया, लेकिन पांडेयजी माने ही नहीं। बोले—तब तो अब मिलनेमें कोई सन्देह ही नहीं है। चलिये, अब मिल ही लिया जाय।'

'चलिये।' मैंने कहा।

विभीषण रोड और सुग्रीव स्ट्रीटकी मोड़पर पहुंचे तो "कद्रा-ब्विस" जी मिल गये। पूछने लगे कहां, तो कुल किस्सा बताया। आपने कहा—"गीताकिशोरजी घर तो अभी न पहुंचे होंगे। अभी

अभी 'मोहन बाबू' उन्हें अपने घर ले गये हैं। वहीं चले जाइये और आनन्दसे मिल लीजिये।'

-'जैसा कहिये।' कहकर हम दोनों आदमी चले तो आप कहने लगे- कृपया यह मोहन बाबूका छाता भी लेते जाइये। कल उनके यहां गया तो पानी बरसने लगा था, इसलिये मैं लेता आया था। कष्ट तो होगा ही, लेकिन -'

'लेकिन वेकिन कुछ नहीं। जहाँ सत्यानाश तहाँ साढ़े सत्यानाश।' कहकर हम दोनों आदमी आगे बढ़े।

मोहन बाबू दरवाजे पर ही मिले छाता सौंपकर गीताकिशोर जी के विषय में जब पूछा, तो आपने कहा कि वे कभी यहां आते भी हैं कि आज ही आ गये।

मैंने कहा -'कदाचित्' जी पण्डितने तो बताया कि आपके साथ आपके यहां आये हैं।

'शाबाश!' उन्होंने हंसते हुए कहा। 'समझ गया, कदाचित् जीने जिस खूबी से मौकेपर छाता पहुँचाया है, उसके लिये मैं उनकी बुद्धिकी तारीफ करूंगा मुझे स्टेशन जाना था। आप महानुभावों द्वारा छाता भेजने की उनकी यह सूझ मुझे दिनभर हंसावेगी। आइये थोड़ी देर बैठकर सुस्ता लीजिये।'

आगमें घृत डालनेकी कहावतका प्रयोग इससे बढ़कर और कहाँ हो सकता है? जरा सुन लीजिये। 'कदाचित्' जी को अपनी सूझका परिचय मोहन बाबूको देना ही था अथवा मुझे गंवार ही बनाना था, तो क्या और समय नहीं था? और फिर पाण्डेयजी को क्यों हैरान किया। लेकिन नहीं, चलो अच्छा हुआ। पाण्डेयजी को मिलने ही की धुन लगी थी, तो यह बहुत ठीक हुआ।

मैंने पाण्डेयजीसे कहा—'चलिये पाँण्डेयजी, आप बगैर मिले तो मानेंगे नहीं, इसलिये उनके घरपर ही चलें।'

पाँण्डेयजीने कहा—'अब मुझे कोई घसीटकर भी पंडित गीताकिशोरके यहाँ ले जाय, तो मैं नहीं जा सकता। फजूलमें इतना दिन चढ़ आया और बेवकूफ बना घूमता रहा। अब चलो घर चलें। विजयाके सेवन बिना अब यह आजकी थकावट उतरेगी नहीं। हम लोग लौट पड़े।

+ + + +

देखते-देखते पाण्डेय अवलायतनजी का बैठक खाना समर-भूमि बन गया। एक-एक सैनिक की संख्या बढ़ी और धीरे-धीरे 'सन् ३१ का सिल-लोढ़ा युद्ध' प्रारम्भ हो गया! कोई भी गाऊ गाना सुन सकता था:—

सबेरे फेर छनेगी भङ्ग।
रातके फेर छिड़ेगा जङ्ग॥

पांडेयजीने स्वयं भी बड़े ढङ्गसे अपना पुराना गाना गाया कि—

विजया-दशमी भर भरा
रहे ऐ मेरे भङ्गके लोटे।
बस, एक मास सत
खाली हो ऐ मेरे भङ्गके लोटे॥
....॥
....॥
हम स्वयं जुल्मके लोढ़ेसे
दिनरात जा रहे घोटे।
पै तू तो आशा दिये
रहे ऐ मेरे भङ्गके लोटे॥

ठीक इसी समय न जाने कहांसे पं० गीताकिशोरजी भी आखिर आ धमके। आपने हड़तालियोंकी तरह पुकारकर कहा—विजयदशमी जिन्दाबाद!

'भंग भवानीकी जै !!

—'आपको भंग भवानीसे मतलब ?' मैंने बादाम छीलना रोक कर पूछा।

—'इसका पता तब लगेगा जब लोटे पर लोटा सगाफकर दूंगा।'—'लेकिन आपको हमलोग आज एक गिलास भी नहीं देंगे।'—'क्यों ?'—'इसलिये कि नीतिके विरुद्ध है।'—'नीतिके विरुद्ध ?'—'हां, नीतिके विरुद्ध है।' 'भंग-भारती' में साफ लिखा है कि 'भंगिया मत देहु गंवारनको।'—'इसका अर्थ है कि मैं गंवार हूँ ?'—'क्या आप चाहते हैं कि अब स्पष्ट रूपसे कहा जाय ?'- 'पं० गीताकिशोर और गंवार ?'-अनुप्रास देखकर कोई भी इसमें सन्देह न करेगा। परन्तु यह तो हमलोगोंकी कृपा है कि आपके नामको समझकर नाम-मात्रका बुद्धिमान भी समझ लेते हैं।' —'अच्छा बच्चू ! भंग तैयार हो जाने दो।' सहसा पाण्डेयजीने कहा—'पण्डितजी, विजय-दशमीके इस अवसरपर मैं आपको बधाई देता हूं।—विजयाके अवसरपर बधाई ! मुझे अवकाश नहीं है; नहीं तो मैं कहीं बैठकर खूब रोता।'—'क्यों ?' —'इसलिये कि देशमें पण्डित हैं' लेकिन सभी परले सिरेके मूर्ख।'—'प्रमाण ?'

—'प्रमाण यह है कि ये न जाने पञ्चांग कैसे बनाते हैं कि कभी 'जन्माष्टमी' मनानी पड़ जाती है, कभी 'रामनवमी' मनानी पड़ जाती है और कभी 'विजया-दशमी'। मुझे अगर पञ्चाग बनानेका अधिकार मिले तो मैं भारत जैसे देशमें प्रति वर्ष प्रति दिन 'एकादशी' ही रखूं। धर्मका धर्म पालन हो और 'सोलहो दण्ड एकादशी मनानेका अभ्यास होनेके कारण किसीको कष्ट भी नहीं, सारा देश एक साथ त्योहार मनावे।'

—'लेकिन क्या आपको पता है कि इसी विजया दशमीको पुरुषोत्तम रामने रावणको मारा था।'

—'मारा होगा। इससे क्या? मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि एक बार मेरी परीक्षामें आया कि 'रामने रावणको मारा'। तो मैंने व्याकरण न जानते हुए भी कर्त्ता-कर्म बड़ी आसानीसे चुन लिया था, और पास हो गया था।

लाला रोशनाईलाल अबतक चुप थे। आपने न जाने कहाँसे एक प्रश्न चुना और बीचमें टोंककर बोले—'पण्डितजी! मैंने बचपनमें भूगोलकी पुस्तकोंमें पढ़ा था कि नक्शेमें जिन जगहोंपर लाल रंग होता है वे ब्रिटिश अधिकारमें समझी जाती हैं। ये इतवारकी तारीखें कलेण्डर छापनेवाले लाल रङ्गसे छापते हैं, क्या यहाँ भी उक्त नियम इसी प्रकार लागू होता है?'

—'जरूर जरूर। तभी तो इतवार सरकारी छुट्टीका दिन समझा जाता है।'

मेरे दिमागमें भी एक जरूरी प्रश्न पूछनेकी इच्छा हुई, परन्तु इसी समय लाला विलायतीरामजी आ पड़े। पण्डितजीने आराम कुर्सीसे उछलकर कहाः—

'क्यों विलायतीरामजी! आपसे मैंने उसी दिन कहा था कि आप अभी तक कांग्रेसके सदस्य नहीं बने?'

विलायतीरामजीने कहा—'पण्डितजी मैं तो उसी समय जा रहा था, लेकिन एक मित्र रास्तेमें मिले, उन्होंने कहा—आपका नाम कांग्रेसवाले बिना किसी जबर्दस्त सिफारिशके लिखेंगे ही नहीं। कांग्रेसका उद्देश्य है स्वदेशीको प्रोत्साहन देना, और आपके नाममें विलायती शब्द आता है।—अतः मैं लौट आया। आप सिफारिश कर दें तो मैं अपना नाम लिखानेके लिये तैयार हूँ।'

विलायतरामजीकी इस बातपर 'विजया-विजयी-दल' हंस पड़ा पण्डितजीने कहा अच्छा बैठिये।

अन्तमें भङ्ग बनकर जब तैयार हुई, तो सभीने पान किया। हम और पाण्डेयजीने पं० गीताकिशोरके लिये आज परेशानी उठायी थी, उसका अब जिक्र किया। मैंने तो क्रोध प्रकट करते हुए यहां तक कहा कि पण्डितजी अगर आज महाभारत-युग होता तो मैं धृतराष्ट्रके आलिङ्गन करनेके लिये जो लोहेकी मूर्ति बनी थी, उसे हटाकर उस स्थानपर आपको खड़ा कर देता और तब यह मानी हुई थी कि वे आपको लोहेकी मूर्तिकी ही भाँति चूर-चूर कर देते।

मुझे सूचना देते हुए हर्ष होता है कि इस 'सन् ३६ के सिल-लोढ़ा युद्ध' में इतनी कार्यवाही होते हुए भी न कोई मरा और न घायल ही हुआ।

एक बार प्रेमसे बोलिये—

विजयाकी जै!

विजया-दशमी जिन्दाबाद !!

ठन् न् न् न् न्

क्लबके कमरेमें आजकी-सी भीड़ कभी नहीं हुई थी। भीतर वाले ऊबकर बाहर निकलने के लिये फड़फड़ा रहे थे और बाहर वाले भीतर जगह न देखकर स्थानकी कमीके लिये घबड़ा रहे थे। स्वागतम-सत्कार करने वालोंकी जान सांसतमें थी। सूझता ही न था कि क्या करें! जब खुद अपने खुरोंको रखनेका स्थान न मिलता हो तो बाहर वालोंको लाकर बेचारे कहां बिठलाते ?

श्री 'गुप चुप' जीने मेरे कानमें कहा कि यह सब दोष है बिना सोचे समझे सूचना निकाल देनेवालोंका। सूचनामें पं० गीताकिशोर शास्त्रीका भाषण होगा, यही काफी था, परन्तु इन गंवारोंने 'ठनननन जैसे अपूर्व विषयपर भाषण होगा तथा अपने इष्ट-मित्रों सहित पधारियेगा' भी जोड़ दिया। ऐसी ही सूचना निकालनी थी तो क्या यह उचित नहीं था कि स्थान भी कहीं बड़े हौलमें तय करते ?

सहसा "ठन न न न न न, वाह! ठन न न न न न, वाह! ठन,न न न न न, वाह! कितना मधुर शब्द है!! सज्जनों! "क्या आप लोग पहचानते हैं कि यह आवाज कैसी है? ठीक है। यह आवाज श्रीरुपियाप्रसादजी की है।" आदि २ शब्दोंसे कमरा गूंजने लगा। एक बार सन्नाटा छा गया। सबकी आंखें कोनेपर की मेजकी ओर घूम गयीं। सचमुच एक छोटे कदका भीम उर्फ नर रूप सांड़ शेरकी आवाजमें दहाड़ रहा था।

"तो सज्जनो? यह आवाज श्री रुपियाप्रसाद जी की है। क्या

आपलोगोंमेंसे कोई ऐसा भी है जो इन्हें न जानता हो ? ये इस लोकके साकार भगवान हैं। प्रसव-पीड़ा इन्हें होती है, या नहीं, इस प्रकारकी बातोंकी विवेचना करनेका अवकाश नहीं है लेकिन मेरी बातपर विश्वास कीजिये। ये प्रत्यक्ष ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। सृजन, पालन और संहार, कौन-सा काम है जो ये नहीं करते ? मुझसे और अन्य लोगोंसे जब-तब झगड़ा होता रहता है उसका एकमात्र कारण यही है कि वे गंवार कहते हैं कि पृथ्वी शेषनागपर टिकी हुई है और मैं कहता हूँ कि यह रुपियाप्रसादजी-की कृपा है, जिसके बलपर पृथ्वी टिकी है।

"जरा सोचिये ! ये चाहें तो कहो निन्यानवेके चक्करमें डाल दें और कहो आपकी चौकड़ियोंको आपके दिलसे छू मन्तर कर दें। इनके साहस दिलानेसे आप नौ-दो ग्यारह भी हो सकते हैं और साहसी भी हो सकते हैं। आपकी गिनती भले ही तीन-तेरह, किसीमें न हो लेकिन ये कृपा कर दें तो, तेरहमें तीन गये कितने बचे ? ठीक है, दस। दसमें तो आपकी गिनती होने ही लगे। इनकी इच्छासे जंगलमें मंगल मनाइये और इनकी अनिच्छासे बस्ती में हस्ती मिटाइये। निर्जन बनमें बना देना और भरे नगरमें 'अगर-मगर' कहलाके मार डालना इनके बायें हाथका खेल है।

"ये आपकी मुट्ठीमें हैं तो सब कुछ आपकी मुट्ठीमें है। ये आपकी जेबमें हैं, आप बड़े बड़ोंको अपनी जेबमें समझिये। ये आपके मनीबेगमें हैं, आपके पैरोंमें वेग है और ये अगर आपके घरमें है तो आपका घर सबकी आंखोंमें है। कहनेका मतलब यह है कि मैं बिना मतलबकी बात जरा कम कहता हूँ परन्तु इतना तो कहूँगा ही कि ये आपके टेंटमें हैं तो आपका भूखा पेट भरा है और नहीं तो भरा पेट भी भूखा है। इनके अधिकसे अधिक भारसे आपकी तबियत अधिकसे-अधिक हल्की रहेगी और इनके

कमसे-कम भारसे आपकी तबियत अधिक से अधिक वजनदार मालूम होगी. इसे तो भूलियेगा ही नहीं ।"

भाइयो ! प्रेस लाइन की बात तो मैं छोड़ देता हूँ, क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि इस लाइनमें काम करनेवालोंको तीन-तीन मास का वेतन एडवांसमें लेनेकी सुविधा प्राप्त है, परन्तु दूसरी लाइनोंमें इनके दर्शनके लिये पूरा एक महीना एँड़ी-चोटीका पसीना एक करना पड़ता है । रोज सबेरे उठकर कलेण्डरका मुँह ताकिये, तब तीस दीनकी तपस्याका वरदान पहली तारीखकी आशा होती है और यही जीवनकी 'मधुर बेला' है ।

'उस दिन रसखान' का एक छन्द पढ़ रहा था जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'पाहन हौं तो वही गिरिको जो कियो ब्रज-छत्र पुरन्दर धारन' । पढ़कर मेरा विचार 'रसखान' से हट गया । मैंने सोचा, यह कवि कितने वर्ष पहले हुआ, लेकिन बुद्धिमें बिलकुल आजकलके कवियोंकी ही भांति मिला । सज्जनों ! मैं अगर कवि होता तो प्रथम तो अपना उपनाम ही 'रुपिया' रखता, और फिर कहीं उपनामकी लज्जा रखनेके लिये यदि कविता भी करनी पड़ती तो भगवानसे गोवर्धन पर्वतका पत्थर होनेकी प्रार्थना न करता । मैं अपनी कवितामें यह भाव रखता कि हे भगवान, यदि मुझे अगले जन्ममें पत्थर ही बनाया तो किसी बड़े बैंकके खजानेका पत्थर बनाना जिस पर रुपियाप्रसाद जी तथा उनके भाईवृन्द नृत्य करते हैं । आप लोग हंसें भले ही, परन्तु मैं सच कहता हूँ कि मेरा बैंकमें एक पैसेका भी हिसाब नहीं है फिर भी बैंकोंमें मैं जबतब जाया करता हूँ । वास्तवमें इनकी आवाज मेरे कानोंको तृप्त करती है ।

"आजकल ये हमसे रूठे हुए हैं और सज्जनों यही कारण है कि मेरी दो स्कीमें आइसक्रीममें पड़ी हैं । पहली इच्छा तो यह है

कि जेठ-बैसाखकी जलजलाती दोपहरीमें एक रिक्शेपर सो-जाऊं और रिक्शावाला रिक्शा तब तक घुमाता रहे जबतक मेरी नींद न खुले। आप लोग सोचते होंगे, गरम चट्टान और दोपहरी-के सूरज से रिक्शावालेको कितना कष्ट होगा परन्तु मैं सोचता हूं कि यदि रुपियाप्रसादजी कृपा करें तो ऐसे नृशंस कार्य करनेकी लगना अपने आप मुझमें आ जायगी।"

"एक दूसरी स्कीम यह है कि एक बार एक पगड़ीवालेने मुझसे क्षमा इसलिये मंगवायी थी कि एक गलीमें मैं लघुशङ्का निवारण करनेके लिये बैठ गया था। यदि रुपियाप्रसादजी कृपा करें तो एकबार मेरी इच्छा उसी स्थान पर फिर वही गलती करनेकी है और इसबार माफी न मांगकर अपने 'पेटी केस' के लिये एक वकील की बहस सुननेकी इच्छा है। पता नहीं ईश्वर कब इन दो अभिलाषाओंको पूरी करेगा।"

"आश्चर्य तो यह है कि रुपियाप्रसादजीके विषयमें भी एक मत नहीं हैं कुछ लोग अपने बुरे स्वभाव के अनुसार इन्हें बुरा-इयोंकी जड़ बतलाते हैं। सज्जनों! मैं अपना भाषण समाप्त कर रहा हूँ लेकिन यदि कोई महानुभाव ऐसे मिलें जो श्री रुपिया-प्रसादजी को बुराइयोंकी जड़ बतलाते हों तो उन्हें इस अकिंचन के पास भेज दीजियेगा कि बुराइयोंकी जड़ें पण्डित गीताकिशोर शास्त्रीके यहां छोड़ जाइये, वे सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।"

बड़ा मजा आया

दूसरोंकी बात मैं नहीं कह सकता, लेकिन वास्तवमें उपरोक्त शीर्षक लिखकर मुझे तो बड़ा मजा आया। 'बड़ा मजा' क्या होता है? इसकी परिभाषा करनेके लिये न तो मेरे पास अवकाश ही है, और न मुझे मालूम ही है। फिर भी जब मैंने इन दोनों बातोंपर विचार किया तो ऐसा अनुभव हुआ कि और भी बड़ा मजा आया।

लाला 'रोशनाई लाल' उर्फ खुली पुड़ियाका नाम सुनकर भले ही आप लोग चौंक पड़ें लेकिन उनकी एकमात्र साहित्यिक सन्तान कविवर 'करेला' जीके परिचय में कुछ कहना, मैं समझता हूं, केवल कीचड़में ढेला फेंकना होगा। आपका कहना है कि मुझे बड़ा मजा इसमें आता है कि मैं बड़े-बड़े साहित्यकोंकी पगड़ी अपने लेखोंसे ही उछाल लेता हूँ, न कसरत करनेकी जरूरत है न बदनको मजबूत बनानेकी फिक्र।

मै 'करेला' की तरकारी भी नहीं खाता, तब साहित्यिक 'करेला' मेरे लिये कितना तीता हो सकता है इसका अन्दाज आप खुद करलें। फिर भी उस दिनकी बात है, भोजन करके घरसे निकला तो दरवाजेपर पहले वही दिखाई पड़े। घरके भीतर होता तो तरह तरहके बहाने बनाकर उन्हें टरका देता, मगर अब क्या किया जाय? खाहमखाह मुठभेड़ हो गयी। मैं लाचार पूछ बैठा—'कहिये, कैसे भूल पड़े?'

उन्होंने कहा—"योंही चला आया आपसे मिले कई दिन हो गये थे। आप सुनकर खुश होंगे कि मेरी कहानियोंका संग्रह छप गया।"

मैंने कहा—"जब आपने लिखा था तो छपता कैसे नहीं ? नाम क्या रखा ?"

'कहानी-कठुला'

'वाह ! क्या सुन्दर नाम है बधाई है' मैंने कहा।

उन्होंने कहा—'यही तो मेरे सभी साहित्यिक मित्रोंने कहा है थोड़ी कमी यह है कि 'टाइटिल' अभी नहीं फिट कराया है, भूमिका तो 'बिकराल' जीने लिख दी, लेकिन, सम्मतियोंका मैटर अभी डेढ़ फरमा ही हुआ है। दो फरमेकी पुस्तक है, तीन फरमें की भूमिका है। अगर तीन फरमे सम्मतियोंका भी मैटर हो जाय तो जरा देखनेमें भी सुन्दर हो जाती। मेरे परिचितोंकी संख्या काफी है, लेकिन इधर कहीं जा न सका। कृपया आप अपनी सम्मति भी तो लिख ही दीजिये।'

मैंने कहा—"जरूर जरूर। मगर अभी तो मैंने उसकी कोई कहानी पढ़ी नहीं। आज दे जायं तो कलतक कुछ लिख दूँगा।'

वे हंसने लगे। बोले 'डेढ़ फरमेंकी सम्मतियोंमें अभी तक मैंने पुस्तक किसीको नहीं दिखायी। आप झमेला न बढ़ायें। पुस्तक मेरी लिखी है। आप पुस्तकसे अधिक मुझे जानते हैं।'

मैंने कहा—'मैं पुस्तक वापस कर दूँगा लेकिन आगे चलकर कदाचित् किसी विरोधीने झगड़ा उठाया तो कमसे कम मैं कसम खानेके लिये पुस्तकको एक बार उलट पुलट तो लूं।

'करेला' जी फिर हंसे। कहा—'इसकी आप चिन्ता न करें। मैं विरोधियोंको देख लूंगा। किसीने जरा भी शैतानी की कि नींद हराम कर दूँगा। साहित्य-सेवा करता हूँ। भाड़ नहीं झोंकता। कई पत्रवालोंसे वचन मिला है। वे अपने पक्षमें ही हैं।'

मेरी उनसे एक भी न चली। आखिर मजबूर होकर मैंने लेटरपैड निकालकर लिखना शुरू किया।

'छपने के पहले 'करेला' जी की कहानी कठुला देखी। कहानियां क्या है, शब्दोंके चोमटे से धधकते हुए समाजके अग्निकुण्डसे चिनगारियां निकाली गयी हैं। कवि केशवदास जीने रामचन्द्रिकामें लिखा है :—

बर-बाण शिखीण अशेषसमुद्रहिं
सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
पुनि लंकहि औटि कलंकितकै,
फिरि पंक कलंकहिं की भरिहौं।
भल भूजिकै राख सुखै करिकै,
दुख दीरघ देवनको हरिहौं।
सित-कण्ठके कण्टनको कठुला,
दशकण्ठके कण्ठनको करिहौं।

"इस छन्दमें परशुरामकी बन्दर-घुड़कीका चित्र है। परन्तु इस पुस्तकमें 'करेला' जीने एक दो नहीं, कितनेही व्यभिचारी दशाननों की कण्ठ-कठुला पिरोकर हिन्दी साहित्यमें परशुरामका पार्ट अदा किया है आशा है कि पाठक हार्टफेल हो जानेके खतरे की उपेक्षा कर कहानी कठुलाके पार्टको देखकर अपना जीवन-कार्य स्टार्ट करेंगे।......"

अभी और लिखनेकी इच्छा थी, लेकिन स्वयं 'करेला' जीने ही रोक दिया।

उन्होंने कहा—"अभी सजाना भी तो है पूरा एक पेज हो जायगा।"

मैंने कहा—"आपका मैटर तो डेढ़ फरमा कम पड़ रहा है न? मैं आपको अधिक परेशान नहीं होने देना चाहता हूँ पूरा करके दम लूंगा।"

उन्होंने कहा—"कृपा है। परन्तु बात यह है कि सम्मति-भूमिका-

ओंकी संख्याकी बात है। दो-दो लाइनोंकी पचास सम्मतियोंका मूल्य सौ लाइनकी एक सम्मतिसे लगभग सौ गुना होता है।"

मैंने उनकी इच्छाके अनुसार हस्ताक्षर कर दिये।

वे चले गये। लेकिन बड़ा मजा आया यह सोचकर कि साहित्य कितनी उन्नति कर गया है। पुस्तक-लेखकोंकी कमी तो है ही नहीं भूमिका लेखकोंकी भी कमी नहीं रही। तुर्रा यह है कि लेखककी जान-पहिचान पुस्तकके मेटरका सैम्पुल है।

इससे भी बड़ा मजा यह सोचकर आया कि सम्मति दाताओं कि हैसियतसे अपना भी आदर होने लगा। लेकिन जब आँख खुली तो मालूम हुआ कि सब कुछ स्वप्न था और तब सबसे बड़ा मजा आया।

खैर, साहित्यिक वातावरणको छोड़िये। भलेमानुषोंकी दुनियामें चले आइये।

जिस दिनकी बात कह रहा हूँ उसी दिनकी बात है। मुझे पता लगा कि श्रद्धेय पण्डित मीराकिशोर जी की 'लछमिनिया' खो गयी है। आठ दिनसे बराबर खोजने पर भी नहीं मिली। मैंने सोचा शोक-प्रकाशके लिये पण्डितजीसे मिलना आवश्यक है। सायंकाल घूमते हुए उनके घर पहुँचा। पण्डितजी घरके भीतर थे। नौकरने मेरे आनेकी सूचना दी तो देखा कि पण्डितजी सदैवकी भांति मृदुल मुसुकानके साथ चले आ रहे हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। दुनिया जानती है कि 'लछमिनिया' उनकी कुतिया थी लेकिन इससे क्या? वह उन्हें प्यारी तो इतनी थी कि जितना शायद नये कवियोंको अपनी कविता। सन्देह मुझे अवश्य हुआ, कि कदाचित 'लछमिनिया' आ गयी हो। लेकिन फिर भी मैं बिना संदेह दूर किये मुंहपर शोकके स्थान पर हर्ष घसीट घसीट कर लानेका साहस न कर सका। सहसा पण्डितजीके मुंहसे फायर हुआ "कस चुप साधि रहे बलवाना।"

मैं हँस पड़ा। पूछा—"पण्डितजी 'लछमिनिया क्या आ गयी ?"

पण्डितजीने कहा—"इन ८ दिनोंमें तो नहीं आयी। लेकिन अभी मैं उसकी राह १०८ दिनों तक देखूंगा। 'जब तक सांस-तबतक आस' पर मेरा बड़ा गहरा विश्वास है।"

दो-चार सहानुभूति सूचक शब्द पण्डितजीको भेंट कर मैंने कहा—'आप तो घरसे ऐसा हंसमुख निकले कि मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि वह मिल गयी है।'

उन्होंने कहा—"तो क्या तुम समझते हो कि कुतियाके शोक में मैं अपने कायापत्रके मुख-पृष्ठपर कोई वेदना-गीत छपवालूं। नहीं हृदय दुखी भले ही हो परन्तु संसार-सरायके मेहमानदारों को आँखों के "कप" में, आंसुओंकी चाय मैं कदापि न दिखाऊंगा। मर्यादा पुरुषोत्तम रामकी सीता खो गयी और फिर भी वह मौकेपर मनोरञ्जनसे नहीं चूके। सुग्रीवके भेजे हुए हनुमान विप्र रूप धरकर जब उनसे सन्देहात्मक ढङ्गसे पूछने लगे।

'को तुम श्यामल गौर शरीरा।
क्षत्री—रूप फिरहु बन बीरा॥'

तो रामने क्या कहा था, मालूम है ?

मुझे मालूम था। तुलसीकी रामायण तो जो हिन्दू होगा उसीने पढ़ी होगी। परन्तु साथ उठने बैठनेवाले पण्डितजीने ऐसा प्रश्न क्यों किया ? लेकिन नहीं, मैं समझता था कि पण्डितजीका मस्तिष्क 'एक तो' सकल ज्ञान-विद्यालय है और दूसरे उनके पास तुलसीकी वह हस्तलिखित रामायण है जिसे कदाचित् तुलसीदासने भी न पढ़ा होगा, लिखा भले ही हो। इसी हस्त-लिखित रामायणसे मैं अनेक बार परास्त हो चुका था। मैंने

हालही में प्रयागकी खोज-पूर्ण और शुद्ध पाठवाली रामायण पढ़ी थी, परन्तु फिर भी मैंने 'नहीं' कह कर पण्डित जीसे पीछा छुड़ाया।

पण्डितजीने कहा—'इसीसे तो कहता हूँ कि बच्चा रामायण खूब पढ़ो विप्र-वेशधारी हनुमान को देख कर हंसते हुए पहले यह कहा था कि हम दोनों एक पत्रके सम्पादक हैं। धनुष-बाण साथ जरूर है लेकिन वास्तवमें हम अपने पत्रके लिये मैटर लेने आये हैं। अच्छा हुआ कि आप मिल गये। सम्पादकोंसे पीछा छुड़ा कर आप वनवासी हो गये! क्या आपने सम्पादकों-को निश्चरोंसे भी भयानक समझ रखा है? यदि आप नगरमें रहते तो हम लेखनी-धारियोंको धनुषधारी क्यों बनना पड़ता?'

मेरा मन आश्चर्य-सागर को उसी प्रकार लांघ गया जैसे हनुमानको रामायण ही में जल-सागर लांघते पढ़ा है। पूछ बैठा—'महात्मन्! जरा वे चौपाइयां तो सुनाइये।

वे कहने लगे:—

हँसि बोले रघुवंश कुमारा।
बन्धु न पूछब हाल हमारा॥
हम दोऊ इक पत्र चलाये।
लिखत रहहिं नित पेट खलाये॥
मैं प्रधान ये उप सम्पादक।
संग रहा पहिले अनुवादक॥
इहां खायगो निसिचर तेही।
कुसल यही हम दुई बचे ही॥
धनुष विलोकि वृथा भय खाये।
तुम सन लेख लेन हम आये॥

पै तुम कहहु विप्र सुखरासी।
साहित्यिक होइ कस बनवासी॥
तात न बास नगर किन लेहू।
पत्रन कहं कछु मैटर देहू॥
सकैं उहैं जो मैटर मांगी।
बन बन तुमहिं लखै केहि लागी॥

मैंने रोककर कहा—"बस, हमें कृपया यह बताइये आपकी हस्तलिखित रामायण रखी कहां रहती है। फांसी भले ही हो जाय लेकिन एकबार आपके यहांसे चुराकर मैं उसे किसी प्रकाशकको सौंपना चाहता हूँ।"

पंडितजीने कहा—"बच्चा, इस विचारको मस्तिष्क-देशसे निर्वासित कर दो। तुम फांसीसे बच जाओगे। तुम्हारी भांति कितने ही अक्लके पीछे मिर्जापुरी लट्ठ बांधकर दौड़नेवाले, इस फिराकमें रहे। दाल न गली तो अब कचालू बेच रहे हैं। मैंने पूरी रामायण कण्ठस्थ कर हस्तलिखित प्रति कहां गायब कर दी है, यह मैं स्वयं नहीं जानता। जरा आते रहो तो इसी प्रकार कुछ स्थान नोट कर सकोगे।

मैं छटपटाकर रह गया। फिर भी बड़ा मजा आया।

विचारका अचार

गँवारसे गँवार मनुष्यको आप पकड़ लाइये। मैं बिना कोई विचार किये ही आपके सामने कह दूँगा कि इसके पास कुछ भले-बुरे विचार अवश्य हैं। तब फिर यदि मैं एक लेख लिखना चाहूँ तो विचार क्यों न मिलेंगे? मैं तो कुछ पढ़ा लिखा भी हूँ। अच्छा तब नीचेकी पंक्तियोंमें मेरे विचार देखिये। महत्त्वशाली तो न होंगे लेकिन आधुनिक अनेक नवयुवकोंके दिमागका तरह एकदम खाली भी नहीं हैं। हाँ, एक बात और कहूँगा, और वह यह कि मेरे ये विचार इस ध्येयसे नहीं लिखे जा रहे हैं कि उनका प्रचार हो, बल्कि इस लिये कि हृदय हाँड़ोमें रखकर मैं उनका अचार भी नहीं बना सकता था, अतः फेंकने जा रहा हूँ। आपका विचार हो तो उनपर विचार करना, अन्यथा विचार तो विचार हैं! जो विचार-शून्य हैं उनके पास होली दीवालीमें भी नहीं जाते।

विचार सम्बन्धी कुछ कहानियां मैंने लिखी हैं। संख्यामें यही १२।२ होंगी। एकसे एक रोचक। संग्रह छपवाऊँ तो लखनऊ की रेवड़ियोंकी तरह बिक जायँ, परन्तु छपवाऊँगा नहीं। आशा करता हूँ उनमें कुछ क्या, सभी आपलोग जानते होंगे। अतः उन्हें जाने दीजिये। देखिये, कोई बुरा विचार न कीजियेगा। इस पैरा ग्राफमें केवल मुझे रास्ता साफ करना था। कहनेका मतलब यह है कि मेरा विचार यह था कि यदि आपके

पास कोई विचार न हों तो शायद मेरे इस अंशसे ही कुछ विचार आ जायँ।

बैताल'कवि'के ६५६ छप्पै आपने पढ़े होंगे, लेकिन आपके विचारसे भी उनका यह छप्पै, मैं समझता हूं, केवल दो कौड़ीका ठहरेगा।

अभिनेत्रीका चित्र देखि कै, चित्र खरीदे।
अभिनेत्रीका चित्र देखि कै, पत्र खरीदे॥
अभिनेत्रीका चित्र रहे सब शोभा पाता।
याते ताको देखि खरीदे टोपी छाता॥

बैताल कहैं बिक्रम सुनो,
लेटर-पैड जब लीजिये।
अभिनेत्री के चित्रका,
लेबुल देखि खरीदिये॥

शिव! शिव!! खैर जाने दीजिये। इसी दिसम्बर सन् ३८ की बात है। आगामी दिसम्बरसे पूरा एक वर्ष और दिसम्बर सन् ३९ से पूरे दो वर्ष हो जायंगे। एक महोदय मेरे पास परिचित होनेका सार्टीफिकेट लेकर आ धमके। मैं कागज लपेटकर तनिक कान खुजलानेवाला था कि उन्होंने टोक दिया। पूछ बैठे—'यह कागज क्यों लपेट रहे हैं?' मैंने बिना विचार किये कह दिया 'इटली-आबीसीनियां युद्धके स्थान नक्शेमें देखूंगा। उंगलियोंसे कागज खराब न हो इसलिये 'प्वाइण्टर' बना रहा हूँ।' उनको सन्तोष हो गया। शान्तिसे बैठ गये परन्तु इसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा उससे मैं कांप उठा। ईश्वर न करे, यह लेख 'छुहारा' जी पढ़ें। महानुभावने मेरे नजदीक खिसक कर कहा कि इसबार 'भुक-भुकी-बन्द' पत्रिकामें 'छुहारा' जी का एक लेख आप ही के ऊपर जा रहा है। आपने पिछले अङ्कमें 'महिलायें

सुखी कैसे हों' शीर्षकसे जो लेख छपवाया था उसे उन्होंने चोरीका प्रमाणित किया है और एक अङ्गरेजी की पुस्तकका उद्धरण देकर उन्होंने अक्षरशः मिला दिया है।'

उक्त महोदयकी बात सुनते ही मेरे पैरोंके नीचेसे जमीन खिसकने लगी। लेकिन मैंने साहससे काम लिया और उनके मुँहपर कह दिया—'हुँह, मौलिक लेखकी कभी कोई चोरीका सिद्ध कर सका है ? एक क्या एक हजार 'छुहारा' जी जुटें तब भी मेरा क्या कर सकेंगे ? ऐसे-ऐसे 'छुहारा' जी मेरे यहां कमरा बुहारा करते हैं। वह फटकार बताऊंगा कि बच्चा उसी दिन घरकी कलम दावात कुएं में डाल दें और साहित्य-क्षेत्रसे ऐसे भग जायं जैसे................अजी, हां,।'

कहनेको तो कह दिया लेकिन आत्माकी कमजोरीके आगे सीनाजोरी कभी नहीं चल सकती। 'सांप मरै न लाठी टूटै' वाली कहावत पर ध्यान गया। आखिर अपना अपना विचार ही तो ! किला फतह हो गया। स्थानीय एक पुस्तकालयमें पहुँचा और सूचीपत्र देखकर 'छुहारा' जीकी कविताओंका संग्रह जो 'गुठली' नामसे छपा था, ले आया।

सच कहता हूँ; रातमें सोया नहीं लेकिन 'गुठली' की आलोचना 'साप्ताहिक 'बांगसाकड़ा' जिसका वह अङ्क तीसरे ही दिन निकला छप गयी। 'बांगसाकड़ा' की ग्राहक लिस्ट अथवा फ्री लिस्टमें 'छुहारा' जीका नाम था अथवा नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता लेकिन तीन अङ्क पैकटोंसे, एकके बाद एक, मैंने अपने हाथों लेटरबक्समें छोड़े।

अब जब मेरा लेख मौलिक था तो मैं 'छुहारा' जीके लेखसे क्यों डरता ? "लेकिन "छुक-छुकी चन्द्र" पत्रिकामें "छुहारा" जी जैसे छिछोरु सहित्यिकने क्या लिखा है, पढ़ना आवश्यक था।

ठीक आठ दिन प्रतीक्षामें घुलनेके बाद अपने समयपर "धुक-धुकी अन्द" पत्रिका आई धुक-धुकी जोरोंसे चलने लगी और मैं पृष्ठ पर पृष्ठ उलटता गया। कोई लेख न था। क्रोधसे मैं टिमाटर हो गया। सबसे अधिक क्रोध आया उन महोदयपर जिन्होंने चकमा देकर मुझसे आत्माके विरुद्ध गुठलीकी आलोचना लिखायी। पता नहीं, उन्हें छुहाराजीने क्या पुरस्कार दिया होगा। परन्तु मुझे फिर दर्शन देते तो मैं वह पुरस्कार देता जो किसी कविको भी कभी कहीं नहीं मिला। हां, चिट्ठी पत्री स्तम्भमें एक पत्र था जिससे उन महानुभावकी सत्यतापर मुझे कुछ विश्वास हो रहा था। उस पत्र में लिखा था—

"गतांकमें "महिलाएं सुखी कैसे हों?" शीर्षक जो लेख निकला था, सामयिक और आदर्श विचारों का था। मैं यह जान कर प्रसन्न हूँ कि आपको इस प्रकार के ऊंचे लेखकों का सहयोग प्राप्त है। लेखक महोदय को मेरी ओर से धन्यवाद।"

किशमिश किशोर 'छुहारा'।

विचार बदल न गया होता तो मैं 'छुहारा' जी पर विचार करता, लेकिन अब एक दूसरी घटना पर विचार करूँगा। बनारस के एक बच्चा साहित्यक (साहित्यक बच्चा नहीं) से भी जाकर पूछिये कि "पान-पुराण पत्रिका" के साहित्यक-सुराही स्तम्भमें अब चूनावती देवी की कविताएं क्यों नहीं निकलती? सम्भवतः यही कारण बतायेगा कि उसके सम्पादक कत्थाकिशोर काव्यतीर्थ और सुपारीशरण शास्त्री, दोनों सम्पादकों के हृदय में बुरे विचार आ गये थे एक दिन शास्त्री जी ने काव्यतीर्थ जीसे कहा कि देवी जी की कविताएं कितने ही दिनसे निकल रही हैं लेकिन हम लोगों ने उन्हें किसी प्रकार का प्रोत्साहन न दिया।

काव्यतीर्थ जी ने कहा - जहाँ रात-दिन पत्रमें प्राण देनेवालों की सुनवाई नहीं है वहाँ कविता आदि के पुरस्कृत करने का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है ' अपने लोग अधिक से अधिक यही कर सकते हैं कि देवी जी का ब्लाक देकर कुछ दिन उनकी कविताएँ निकालें।' उसी दिन चूनावती देवी को पत्र भी लिखा गया, जिसमें ब्लाक के लिये शिष्ट से शिष्ट भाषा में अनुरोध था' परन्तु देवी जी का विचार न मालूम किधर गया। हिन्दी साहित्यमें रिसर्च करनेवाले ही यह बतला सकते हैं कि नीचे का यह छन्द किस कवि का है। चूनावती देवी एक तो खड़ी बोली छोड़कर ब्रजभाषा लिखती न थीं, दूसरे उन्होंने स्वयं एक जगह लिखा था कि मैं अधिक उत्तर क्या दूं, केवल एक कवि की पुकार ही मेरी आत्मा की पुकार समझो। छन्द यह था—

यों लिखिकै भटकावति हो मोहि, मैं तुम्हरो गुन जानौं एडीटर।
आनन सों तुम बातन में घट, भीतर की न बखानौ एडीटर॥
चातुर ह्वै न छिपौ हमसों, तुम व्यर्थ गहौ अभ बानौ एडीटर।
चित्रमें भिन्त है पापहिकी यह,'यह ब्लाककी मांग'बहानौ एडीटर॥

अपना-अपना विचार ही तो है! 'साहित्य संहारिणी सभा' से महाकवि तुलसीकी हस्त-लिखित प्रति उठाकर देखिये। पृष्ठ ६६ पर लिखा है:—

'तुलसी' जगमें सजग रहु, बुरी प्रेसकी मार।
तिन्ह महँ अति दारुण दुखद कवि, लेखक, अखबार॥'

उस दिन हमने पण्डित गीताकिशोरजी शास्त्रीसे कहा—महात्मा आपके कविवर तुलसीकी "तेहू पर करहिं जे शंका। मोहिते अधिक ते जड़मति रंका॥" चौपाईकी परवाह न कर उनकी ६०३ गलतियां जो छांटी हैं उनमें आपने एक स्थानपर लिखा है कि तुलसीदासका विचार नारी समाजको दोषी ठहरानेका कदापि न

था। 'ढोल गँवार शुद्र पशु नारी' चौपाईमें जो नारी शब्द आया है वह तुलसीदासजीके तनिक आलस्य और असावधानीसे आया है। बात यह है कि चौपाईके उस ओरके अन्तमें अधिकारीका और इधर 'ढोल गंवार शुद्र पशुके साथगिनाने जानेवालीके वजन की तुक दूसरी नहीं बैठ सकती थी। अतः नारी शब्द फिट कर दिया।' लेकिन अब इस दोहेपर क्या सफाई पेश करते है?

अपना-अपना विचार ही तो है! उन्होंने कहा -"यह दोहा यातो किसीने बदमाशीसे उनका नाम जोड़कर बनाया है अथवा यह तुलसी कोई और तुलसी होंगे। मेरे यहां जो हस्त-लिखित प्रति है उसमें उन्होंने प्रोत्साहन दिया है। उन्होंने लिखा है-

अनुचित उचित विचार तजि, लिखहिं लेख दिन रैन।
ते भाजन सुख सुजसके, बसहिं अमरपुर ऐन॥

बिनु कछु लिखे न तपनि निसाहीं।
तपनि अछत सुख सपनेहु नाहीं॥
बिना लिखे कस होइहैं नामा।
थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा॥
बिनु निज पत्र कि समता आवइ।
कोउ अबकास कि नभ बिनु पावइ॥
'कीरत' बिना किये नहिं होई।
बिनु महि गन्ध कि पावइ कोई॥
घटिया मैटर, चह निरतारा।
जल बिन रस कि होई संसारा॥
भलो न बिना, सुलेखक पाई।
जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं॥
ग्राहक कम, मन होइ कि धीरा।
परस कि होइ विहीन समीरा॥

(एक चौपाईके लिये वे रुके रहे पर याद न आयी तब नीचे का दोहा उन्होंने पढ़ा)

बिनु परिचय मैटर नहीं, तेहि बिन द्रवहिं न लोग।
ढोंग किये छापा करे, पत्र न लह कछु भोग॥

खेद है कि हमलोग आज कवियोंके निवासस्थानादिकी ऊट-पटांग बातोंकी रिसर्च कर भूमिकाका मैटर बढ़ाना चाहते हैं। सांप को न मारकर बांबी कूट रहे हैं। यदि कविताओंकी रिसर्च करें तो समाजका अधिकसे अधिक हित हो सकता है। कहिये अब आपलोगोंका क्या विचार है?

भारतमें महिला पुलिस

'पुलिस' को 'अशरण-शरण' कहा जाय तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। जब आपके लिये कहींसे रोटीका प्रबन्ध न हो सके, पुलिस आपको जेल ले जाकर खाना देगी। ठीक इसी तरह लेखक होकर भी आपको लिखनेके लिये कोई विषय न मिलता हो तो 'पुलिस' को लीजिये, लिखिये और खूब लिखिये।

यद्यपि आप लोगोंमेंसे अनेक भाइयोंकी तरह मैं भी पुलिससे डरता हूँ और इतना डरता हूँ कि मील-दो मीलका चक्कर देकर भले ही जाना पड़े परन्तु उस रास्तेसे भी नहीं जाता जिसमें थानेकी चौकी की इमारत पड़ती है। फिर भी आज पुलिसका जिक्र क्यों छेड़ बैठा, पहले यही रहस्य बता देना ठीक होगा।

बात यह है कि आज देशकी हवा ही बदली हुई है। लोगोंके अन्दर जो भयका भूत था, अब शायद भागनेवाला है। अतः जब समाचारपत्रोंमें स्वराज्य स्वदेश, भारतमाता, बन्देमातरम् आदि आदि शब्द छपने लगे हैं तो थोड़ा साहस दिखानेके लिये हम लेखकोंको भी आगे बढ़ना पड़ता है। आज हम फागुनके इस मस्त महीनेमें इस विषयपर अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं कि यदि पुलिसमें नवयुवक न होकर नवयुवतियाँ भर्ती की जातीं तो भारतीय शासन-विधानपर क्या असर पड़ता ?

आप लोगोंने भूगोलकी पुस्तकोंमें पढ़ा होगा कि यदि भारतके उत्तरमें हिमालय न होकर 'नागरी प्रचारिणी सभा' का संग्रहालय होता, तो न तो मानसूनकी हवायें ही टकरातीं और न देशमें पानी ही बरसता। परिणाम यह होता कि इस भौगोलिक परिवर्तनसे

भारतका इतिहास आज दूसरे रूपमें होता। परन्तु यदि आप थोड़ा ध्यान देकर इसी प्रकार इस बातको भी सोचें कि पुलिसमें पुरुष न होकर महिलाएँ होतीं तो क्या होता, तो भी वही बात निकलेगी। भारतका इतिहास इस परिवर्तनसे भी दूसरे ही रूपमें होता। मेरी तुच्छ बुद्धिमें शायद सबसे बड़ा परिवर्तन तो यही होता कि आज सभी जेलखाने आबाद और घर बर्बाद हो गये होते!

शहरोंको ही लीजिये। शायद प्रबन्ध ठीक रखनेके लिये जगह जगहपर कानिस्टेबुल रहते हैं। ये कानिस्टेबुल अगर कठोरांगी पुरुष न होकर कोमलाङ्गी महिलाएं होतीं तो यह बात मानी हुई है कि प्रबन्ध बड़े मजेका होता। खुराफी कारीगरीके लाजवाब नमूने देखनेको मिलते! आफिसोंके बाबू लोग छुट्टी पाते ही बे-काबू हो कर शामको पार्कोंमें हवा खाने न जाकर दिलके दर्दकी दवा खोजते शहरकी गलियों और सड़कों पर चक्कर काटते। किसी चौराहे की मोड़पर अगर कहीं कोई कानिस्टेबुल 'हुस्नका पुतला' होता तो एक एक करके अनेक 'हुस्नपरस्तों' का मेला लग जाता; भीड़ हटाये न हटती। कानिस्टेबुल सख्ती करता तो उसी-की कम्बख्ती आ जाती, लोग उसीको धक्का देकर आते-जाते नजर आते। इन्क़लाब जिन्दाबाद के नारे तो न लगते, परन्तु तड़पते दिलोंसे अजीब फड़कते तराने सुननेको मिलते। मस्तीके आलममें मुँहसे, लाख रोकनेपर भी, आवाजें निकल ही पड़तीं कि—

चश्म दोनोंसे कुछ तो इशारा हो जाये।
नाम हो आपका काम हमारा हो जाये॥

कहनेका मतलब यह है कि चौराहोंपर मजा मूसलाधार बरसता। लाजवाब कानिस्टेबुल जिस समय गम्भीर होकर ट्रामों

और बसोंको हाथ उठाकर 'काशन' देता तो अजीब गुल खिलता। दोनों हाथोंको ऊपर देखते ही लोग महिला-कनिस्टे-बुलकी अदा ही पर फिदा हो जाते। पैसेञ्जरोंकी गर्दनें गाड़ियाके भीतरसे बाहर निकल आतीं और ड्राइवरोंको लकवा-सा मार जाता। सभीके स्वप्न तब तक न टूटते, जब तक गाड़ियाँ लड़ न जातीं।

कुछ लोग कहते हैं कि पुलिसवालोंको गालियाँ भी देनी पड़ती हैं, महिलाओंसे यह काम न हो सकेगा, परन्तु शायद इन कुछ लोगोंको पूरा अनुभव नहीं है। आज देशमें उन महिलाओंकी कमी नहीं है, जिनकी जबान ब्लेडसे भी तेज चलती है। भर्ती होनेके वक्त ऐसी महिलाओंमें यह गुण देख लिया जायगा। गालियाँ देते समय जो गालियाँ ये देती हैं वे तो दे ही लेतीं शेष अपने पतियों आदिके मार्फत कहकर जोड़ लेतीं। हाँ,यह हो सकता है कि कुछ 'गालियाँ खाईं मगर मुँह तो मीठा हो गया' सिद्धान्तवाले महानुभावोंको इनके गुस्सेपर प्यार आ सकता है। परन्तु ऐसे लोग तो पुरुष कानिस्टेबुलोंके समयमें भी हैं, जिनका सिद्धान्त है कि "सौ-सौ धक्के खाकर" भी तमाशा देख ही लेंगे।

इसके अतिरिक्त अभी भारतीय पुलिसमें पुरुष रक्खे जाते हैं, अतः जनता को कुछ शिकायतें हैं। पुलिसका कर्त्तव्य जनता-की सेवा करना है, परन्तु वह अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करता। सेवाके स्थानमें उसमें स्वार्थ की भावना भर गई है। लेकिन यदि पुलिसमें महिलायें रखी जाने लगें तो सरकार इस दोषसे मुक्त हो जाय। सेवाके भावोंकी महिलाओंमें कमी नहीं होती है। बुरी-भली ऐसी कोई भी सेवा नहीं है जो इनसे न हो सके। अतः सेवाकी भावनाका प्रश्न तो हल ही हो जाता है और बात आ पड़ती है स्वार्थ की। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महिलायें

"पुरुषोंकी अपेक्षा स्वार्थ गाँठना अधिक जानती हैं, परन्तु मेरी समझसे इनके अधिकसे-अधिक स्वार्थ गाँठनेमें लोगोंको सन्तोष ही होगा। जनताके साथ इन्होंने सहानुभूति किसी अंशमें भी दिखाई तो जनता को कोई भी आपत्ति न होगी! लोग इस चेष्टामें रहेंगे, कि अमुक कानिस्टिबुल बड़ा भला है इसलिये उसे किसी प्रकार लाभ पहुँचाना चाहिये। बस, यह भावना आई नहीं कि हजारोंकी रकम मुट्ठीमें सौंपकर भी लोग दूसरोंसे तो क्या, अपने बड़े बूढ़ोंसे भी यह जिक्र न करेंगे कि अमुक कानिस्टेबुलको इतनी रकम दी गई है। इस प्रकार पीड़ित करके जनतासे रकम ऐंठनेका जो दोष पुलिस पर है उससे सरकार बाल-बाल बच जायेगी। लोग इस ताकमें रहेंगे कि पुलिस पीड़ित करके इनसे रकम ऐंठे।

एक महत्वपूर्ण बात और है, और वह यह है, कि अभीतक कांग्रेसी लोग जेलखानोंको राष्ट्रीय-विद्यालय भले समझते हों परन्तु जो लोग वहां एक बार हो आये हैं वे वहां के सुखों की कल्पना करके शायद इन राष्ट्रीय विश्वविद्यालयोंमें फिर आसानीसे न जाना चाहें। परन्तु यदि महिला जेलर और सुपरिण्टेण्डेण्टकी देखरेखमें रहनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ होता और कुछ भी दिल लग गया होता तो जेलें सचमुच दुबारा भी उन्हें 'राष्ट्रीय विद्यालय' दिखाई पड़तीं। कोई कोई तो बड़े गर्वसे कभी कभी कहते कि, भाई उस अमुक जेलरका तो क्या कहना, आनेकी इच्छा न होती थी। जेलसे निकलता तो आँसू निकल आये थे।

कोई कहता—'हुँह' उस जेलरको लिये फिरते हो? उस कानिस्टेबुलको नहीं देखा, जिसने अदालतमें हमारे हाथोंमें हथकड़ियाँ डाली थी? सच कहता हूँ, हथकड़ियाँ तो पीछे पड़ी थीं, मैं तो पहले ही कैद हो चुका था' आदि आदि।

देहातोंकी हालत हम कह नहीं सकते। संक्षेपसे संक्षेप यही समझ लीजिये कि इन्सपेक्टर और कानिस्टेबुल दुखियोंके बीचमें रहकर भी चाँदी काटते, रोज ही पौ बारह होता। हाँ, अलबत्ता कभी-कभी शहरोंके समाचार पत्रोंमें जो समाचार प्रकाशनार्थ आते वे अधिकतर दुखद होते।

खुफिया महकमे की बात भी खुफिया रखने से काम न चलेगा। बात यह है कि पुरुषों की सभाओं के सम्पर्क में जाकर पुलिस कुछ रिपोर्ट पा जाती है, लेकिन इससे पूरी कामयाबी नहीं मिलती। यदि महिलायें खुफिया में रखी जायँ तो ये महिलाओं के विचारों और कार्यों की रिपोर्ट घरों के भीतर से भी ला सकती हैं। घरवाले पुरुष कोई आपत्ति न करेंगे। वे प्रत्येक घर में जाकर मनमाने ढंग से जो पता लगाना चाहें, लगा लें। हाँ, मुसीबत आने की यही सम्भावना हो सकती है कि यदि किसी विशेष महिला के विशेष पति की पाकेट में किसी ढंग से 'बम' का गोला खोजने लगी और उस विशेष महिला की नजर पड़ गयी तो वह अपने अधिकार को हरते न देख सकेगी। पति की पाकिट तलाश करने का अधिकार सबको नहीं हुआ करता, अतः ऐसे मौकोंपर गड़बड़ी हो सकती है। फिर भी इसमें सन्देह की जरा भी गुंजायश नहीं है कि खुफिया महिला पुलिस से गुप्त बातों का पता अबसे कई गुना अधिक लगेगा। रिपोर्ट अधिक मिलने में अगर कुछ खतरा भी आ जाता तो यह कोई वैसी बड़ी बात नहीं है। फिर, खुफिया का कर्मचारी चाहेगा तो प्रत्येक पुरुष के आर्थिक विचारों को भी जान सकेगा। महिला के चक्कर में पड़कर पुरुष जल्दी खुल जाता है, यह पुराने लोगों का मत है और सोलहों आने सच है।

सरकार को भी महिला-पुलिस रखने से फायदा एक-दो-गुना

नहीं, दस गुना होगा। अभी वह कानिस्टेबुलों को वेतन भी देती है और ऊपर से घूस का मिथ्या दोषारोपण भी किया जाता है। महिला-पुलिस बिना वेतन की भी रखी जाती तो कठिनाई न थी। वेतन के रुपये भी बचते और इधर कानिस्टेबुल भर्ती होने के दस-पाँच बरस के भीतर ही डरा कर धमका कर, प्रेम से, चाल से, जिन्दगी भरके लिये कमाई कर लेते। घूस देकर भी लोग घूस देने का प्रचार न करते।

दूसरी बचत होती हथियारों आदि के खर्च की। पुरुष कानिस्टेबुलों को डंडे, तमचे, तलवारें और बन्दूकें सौंपकर भी कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ता। कानपुरके जैसे दंगे जब छिड़ जाते हैं तो हथियार बेकार साबित हो जाते हैं। खर्च का खर्च और पूरा लाभ नहीं! लेकिन महिला पुलिस रखकर हथियार देने की आवश्यकता नहीं। तलवार तेगा, बरछी, छुरी, कटारी, बन्दूक कोई भी ऐसा हथियार नहीं है जिसका काम इनकी आँखें न कर सकती हों। बिना हथकड़ी के पुरुष को कैद ये कर लें, रस्सी का काम जुल्फें दे सकती हैं, इसके गवाह पुराने शायर और कवि हैं। अपराधी को फाँसी पर लटकाना हो तो हँसा खेला कर ये जिस खूबी से जान निकाल लेती है कि कोई कष्ट ही न मालूम पड़ता। फाँसीके तख्तेपरका अपराधी स्वयं इनसे कहता कि—

"उठा लाओ खंजर करो कत्ल हमको।
बहुत देर से सर झुकाये हुए हैं॥"

सरकार यहाँ पर यह कह सकती है कि—'लेकिन पोशाक में इनके 'सीने' के ऊँचे होने से कपड़ा अधिक लगेगा, परन्तु हम इस दलील को लचर मानेंगे। सीने में कपड़ा अधिक लगेगा, उससे कहीं ज्यादा बचत 'बेल्ट' (चपरास) के चमड़े में होगी।

कारण यह है कि बुजुर्ग शायरों के हिसाब से इनके कमर एक तो होती ही नहीं है, और यदि होती भी हो तो यह मानना पड़ेगा कि बेल्ट में चमड़ा बहुत थोड़ा, नहीं के बराबर लगेगा। अतः लाभ का लाभ, और खर्च कम ! इससे बढ़कर अब और क्या चाहिये ? इस पर जनता भी खुश रहेगी, यह कमीशन में ! इसलिये यदि ऐसा कर दिया जाय तो शायद पुलिस की सारी शिकायतें एक साथ छूमन्तर हो जायँ। देखें, महिला पुलिस का यह राम-राज्य देखने का अवसर कब आता है ?

आँसू

अपनी जाति, अपने समाज एवं अपने देशके लिए अधिक नहीं तो कमसे कम अपनी शक्ति भर आंसू बहा देना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। मैं अपने इतने जीवन में तो यह काम नहीं कर सका हूँ, और भविष्यमें भी कर सकूंगा, इसकी कोई आशा नहीं है, परन्तु विचार अवश्य रहता है। बचपन में पिता जी 'ऐसा पीटूँगा कि छलक से आँसू निकल आवेंगे' कहकर केवल धमकाते ही नहीं थे, बहुधा आँसू निकाल भी देते थे, किन्तु कहते हुए दुःख होता है कि उन दिनों मुझे जाति, समाज और देश का कुछ ज्ञान ही न था। परिणाम यह हुआ कि सभी आँसू बेकार गये। देश-जाति और समाज के किसी काम न आये। हाँ, इधर जब से जाति, देश और समाज का ज्ञान हुआ है, कई बार इनपर आँसू बहाने की कल्पना हुई है, परन्तु सबसे बड़े खेद का विषय है कि अब आँखों से आँसू निकलते ही नहीं हैं।

उस दिन कोई त्योहार था। त्योहारोंके दिन अन्य साधारण दिनों की अपेक्षा अधिक भोजन करना मेरी पुरानी आदत है, अतः उस दिन भी अधिक भोजन कर गया था। चारपाईपर लेटे-लेटे जब एक दैनिक पत्र के सम्पादक महोदयका सम्पादकीय पढ़ने लगा, तो मन न जाने कैसा-कैसा होने लगा। जोशकी लहर दिलमें आई तो मैं जाति, देश और समाज पर कुछ आँसू गिरानेके लिये उठकर बैठ गया। सहसा मस्तिष्कमें फिर एक

विचार आया कि इतनी बड़ी जाति, इतने बड़े समाज और देश एक आदमीके आँसुओंसे हो ही क्या सकता है ? मैं यह सोचकर कि एकसे दो आदमियों के आँसू कहीं अधिक काम करेंगे, पं० गीताकिशोरजी शास्त्रीके घरकी ओर चल पड़ा।

शास्त्रीजीके दरवाजेपर जब मैं पहुँचा, तो देखा, एक चौकी-पर पल्थी मारे बैठे हुए हैं। आँखोंसे आँसुओंका श्रोत जारी था। मैं आंसू निकालनेके लिये तो अवश्य गया था, परन्तु वे पहलेहीसे इस कामके लिये तैयार मिलेंगे, इसकी स्वप्नमें भी आशा न थी। चकित होकर उनकी ओर देखता हुआ मैं पासकी ही एक बेञ्चपर बैठ गया। दिलको एकबार कड़ा किया और पूछा-"पण्डितजी, क्या बात है ?"

"बात कुछ नहीं है। हमारे पड़ोसीका लड़का ननुआ जो यहाँ खेला करता है, उसे तो तुम जानते ही हो। न जाने कहाँसे तमाम पिपरमेण्ट लाकर मेरी आँखोंमें मल कर भाग गया है। अब तो ठीक है। अभी तक तो आँखें ही नहीं खुलती थी।"

पण्डितजीके इस उत्तरसे जानमें जान आई।

मैंने कहा—'सुन्दर है। मैं इसी कामके लिये आया भी था।'

—'किस कामके लिए ?'

—'आँसू निकालनेके लिए।'

—'क्यों ?'

—"इसलिये कि कुछ आँसू आप अपनी जाति, समाज और देश को भी भेंट करें, सब व्यर्थ ही में न गवाँ दें।

पण्डित जी कुछ कहने ही वाले थे कि न जाने कहाँसे लाला रोशनाई लाल भी आ पड़े देखा तो आप भी रूमालसे आँसू पोंछ रहे थे और प्रवाह जारी था। इस खुर्राटको मेरे अभिप्रायका पता कैसे लग गया, यह सोचकर मैं मनही मन कुढ़ने लगा, परन्तु

फिर भी प्रश्न किया—"लालाजी, ये आँसू किसके ऊपर निछावर कर रहे है ?"

—"आँसू क्या, घरसे यहीं आ रहा था कि रास्ते में कचालू वाला दिखाई पड़ा। मैंने सोचा, भूख लग रही है, दो पैसेका खा क्यों न लूँ। परन्तु सालेने इतनी मिरच डाल दी कि कलेजा जल रहा है। आँखोंके आँसू अभीतक नहीं बन्द हुए।"

—"ठीक है।" मैंने कहा—"आज ही तो जाति, देश और समाजको पता चलेगा कि आँसू बहानेवाले इस आर्यावर्त में कितने हैं!"

बातका सिलसिला फिर शुरू होनेवाला था कि पीछेसे किसी ने मेरी दोनों आँखें उसी प्रकार मूँद ली, जैसे किसी तस्वीरकी दूकान मे राधिका कृष्णकी आंखें मूँदे हुए थीं। हाथसे टटोला, तो पता चल गया। "कदाचितजी सामने आ जाइये।"—मैंने हाथोंसे हाथ हटाते हुए कहा। कदाचितजी हाथ हटाकर सामने आये, परन्तु उनकी भी आँखें आँसुओंसे भरी हुई थीं।

—'कदाचित जी की आँखोंमें आँसू देखनेका मुझे कभी भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। आज कोई असाधारण घटना जरूर हुई होगी, यह सोचकर मैंने कारण पूछा। आपने बड़ी विचित्र सूरत बनाते हुए कहा—"मेरा साला आया था। आज वह अपनी बहनको विदा करा ले गया है। लगभग दो मासतक मेरे दाना-पानाकी फिकर कौन करेगा, जब यह सोचता हूँ, तो कलेजा मुँह को आता है। आप लोगोंके बीचमें आकर हँस भले ही दूँ, परन्तु उनके आनेतक मेरी आंखोंसे निकलनेवाले आँसुओंको रोकने वाली शक्ति किसमें है ?'

'कदाचित' पण्डितकी इस बातको सुनकर हम सभी लोगोंके

मुँहपर हँसीकी एक रेखा दौड़ गयी। लाला रोशनाईलाल मुँह खोलनेका उपक्रम करने लगे, तो पं० गीता किशोरजीने उन्हें चुप रहनेका इशारा किया और स्वयं ढङ्गके साथ खड़े हो गये। मैं समझ गया कि अब यह कोई व्याख्यान अवश्य देंगे। वास्तवमें शास्त्रीजीके पास एक जबरदस्त अस्त्र जो है, वह है व्याख्यान। अपने इस अस्त्रसे इन्होंने अनेक युद्ध ही नहीं किये हैं, सदैव विजय भी पाई है। एकबार वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वाले जब हार गये और महीनों कहींसे एक भी पैसा चन्दाका न मिला, तो 'आवश्यक-सभा' का प्रोग्राम निकाल कर इन्हें ले गये थे। सभाके प्लेटफार्म पर पण्डित गीताकिशोरजीने जो चिल्लाकर भाषण देते हुए कहा कि "भाइयों! हम मर रहे हैं, हमारी जाति रसातलको जा रही है। दूसरी जातियोंको देखो, उन्नतिके किस शिखर पर पहुँच गई हैं, आदि-आदि" तो बड़ा प्रभाव पड़ा था। चन्दाकी रकम जब सामने रखी गई, तो कहते हैं इक्कीस रुपये नकी नक़द इकट्ठे हो गये और संघकी वार्षिक रिपोर्टकी छपाईका जो बिल रुका पड़ा था, उसी दिन चुका दिया गया।

और उसी दिन नगर—आर्य समाजके मंत्रीजी भी इन्हें अपने वार्षिक अधिवेशनपर ले गये। कहते हैं, वहाँ पर भी जो इन्होंने वर्णाश्रम स्वराज्य संघवाले भाषणको दोहराया और कहा कि सब जातियाँ देखो कहाँ निकल गई हैं, तो यहाँ भी उपस्थित जनतामें वही जोश आया। मिनट पीछे एक रुपया आना शुरू हुआ, तो घंटेभरमें साठ रुपये चटसे चन्देमें आ गये। मंत्रीजीने दस रुपये इनका पारिश्रमिक भी दिया और उसी समय ऐलान कर दिया कि ये रुपये अब फण्डमें जमा हो जायँगे। 'सत्यार्थप्रकाश' जिन लोगों-ने धनाभावके कारण अभीतक न खरीदा हो खरीद लें। आजसे एक महीनेके भीतर खरीदनेवालोंको केवल आधा मूल्य देना पड़ेगा।

हाँ, तो पण्डित गीताकिशोरजी खड़े हुये। आपने जोश भरी आवाजमें कहा—

"बन्धुओं! यद्यपि यह मेरा पहला अवसर है कि मैं इतनी उपस्थितिमें भाषण देने जा रहा हूँ, परन्तु मुझे प्रसन्नता है कि भाषण देनेका एक अवसर मिला। आप लोग कदाचित् जानते होंगे कि वैद्यकके अनुसार जिस प्रकार मल-मूत्र, अधोवायु छींक, जँभाई, भूख और प्यास आदिके वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार व्याख्यानके उद्‌गारोंके रोकनेसे भी एक रोग उत्पन्न होता है। व्याख्यान देनेवाला व्यक्ति यदि महीनों अपने भावोंको व्यक्त करनेका अवसर न पाये, तो उसे पेट फूलने तककी बीमारी हो सकती है। व्याख्यान देना भी स्वास्थ्यके लिये बड़ा हितकर है। गलेके भीतर एक प्रकारका मैल जमा रहता है, अतः वैद्यकमें लिखा है कि प्रत्येक मनुष्यको गला फाड़-फाड़कर कुछ शब्द अवश्य कहने चाहियें, ताकि मैल साफ हो जाया करे। मैंने लगभग एक माससे कहीं भी भाषण नहीं दिया है। अतः आज अपने उद्‌गारोंको अवश्य प्रकट करूंगा। आप लोग ध्यानसे सुनिये।

एक बारकी घटना है। शामके सात बजे होंगे। मैं इसी कलकत्तेमें बड़ा बाजारसे अपर चीतपुरकी सड़क पकड़े बाग-बाजार जा रहा था। ज्योंही बाँसतल्लाके मोड़पर पहुँचा कि मेरे कानोंको किसी सुरीली आवाजने खींच लिया। मैं खड़ा हो गया। हारमोनियम और तबलेकी ध्वनिके साथ एक गायिका गा रही थी-

"मजा बरसात का चाहो तो इन आँखों में आ बैठो।
सियाही है, सफेदी है, सफक है अब्र बारां है॥"

"भाइयों! जिस समय यह शेर मैंने सुना, मैं पसीने से लथ-पथ हो रहा था। बड़ी इच्छा हुई कि ऊपर चढ़ कर बरसातके

मजे लूँ, परन्तु जा रहा था एक आवश्यक काम से। उस समय आँखें तो क्या, मुझे आरम्भ कुर्सी भी मिलती, तो बैठनेकी फुरसत नहीं थी। फिर भी मैं दो चार मिनटके लिए वहीं खड़ा हो गया, कानों में आवाज फिर आई: —

"यूं मचलना बे सबब है हर घड़ी किस कामका।
किसने जलाया दिल तुम्हारा दिल जले तुम आँसुओं॥
मोतियों की बन लड़ी ढरका किये किस रंजमें!
क्यों उमड़ कर बह रहे हो मनचले तुम आंसुओं?"
"लौट जाओ क्यों बिरहको, छोड़ते सन्तप्त कर,
क्यों भटकते दरबदर होकर निरादर आँसुओं?
है हृदय मन्दिर खुला इसमें जगह लो शान्तिसे,
कञ्ज कलिका कुञ्जके कोमल कलाधर आँसुओं!"

× × × ×

"दोनों आँखें मेरी रोनेमें हैं सावन भादों।
एक भादोंकी घटा एक घटा सावन की॥"

कहने का मतलब यह है कि मैं बिना मतलबकी बात जरा कम कहता हूँ, परन्तु इतना जरूर कहूँगा कि उस समय इतना ही सुनकर मुझे आवश्यक काम अनावश्यक जान पड़ने लगा। ईश्वर सत्यानाश करे उस मोटर ड्राइवर का। उसने मेरे पैरों के पास आकर मोटर रोक ली और बोला—"मर जा कुचलकर। बुढ़ापे में इश्कबाजी सूझी है, तो ऊपर क्यों नहीं जाता? सड़क क्या तेरे बाप की है?' गंवार समझ कर मैं उससे लड़ा तो नहीं, परन्तु मजा तो किरकिरा हो ही चुका था। मैं आगे बढ़ा।

खैर, एक मियाँ साहबका हाल सुनिये। जिन्दगी रोते ही बीती थी। मरे तब भी आँखें डबडबाई हुई थीं, फिर भी जास-

वालों ने उन्हें कब्र में तोप दिया। कहते हैं कि आपने कब्र के भीतर जो रोना शुरू किया, तो उस गाँव में जितने अन्ध कुएँ थे, सब पानी से भर गये। "तजल्ली" साहब ने जब हाल सुना, तो उन्होंने लिखा—

"हम जेरे खाक लेकर जो चश्म तर गये।
अन्धे कुएं भी जितने थे पानीसे भर गये॥"

यह है आँसुओंका हाल, परन्तु आजकल ऐसे आँसू अब किसके निकलते हैं?

"रोऊँगा अगर आकर तेरी गलीमें यार।
पानी ही पानी होगा हरेक घरके पास॥

का दम भरनेवाले आजकल कहाँ है? अब न तो 'सखी इन नैनन तें घन हारे' वाली सखियाँ ही हैं और न 'दिखलाये हमने लेके जो दामन पै दुरें अश्क, कायल हमारी आँखके सब जौहरी हुए' वाले सखे हैं। 'यहाँ तक गिरियामें रोये सहर तक, गली कूचेमें है पानी कमर तक' वालोंका आज इस संसार-में पता ही नहीं मिलता है। जिनका पता मिलता है, उनके आँसू देखनेका जी भी नहीं चाहता।

आपलोग मेरे दरवाजेपर आंसू भरकर बैठे हैं, परन्तु ध्यान रहे यह मेरा दरवाजा ही है, कांग्रेस अथवा हिन्दू महासभाके अधिवेशनोंका प्लेटफार्म नहीं है। आपलोग मुझसे रूमाल लीजिये और इन निकले हुए आँसुओंको पोंछ डालिये, क्योंकि आँसुओंसे कुछ होना जाना नहीं है।

'रहिमन असुवा नयन ढरि जनि दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कह देय॥'

सज्जनों! मैंने सुना है कि अबलाओंके आँसुओंमें बड़ी शक्ति

होती है। एक द्रौपदीने महाभारत करा दिया था, तब हमलोग क्यों आंसू बहावें ? आपलोग आंसू बहानेका काम अपनी-अपनी औरतोंको दीजिये। वे आसानी से इस कार्यको सफल बना सकेंगी, लेकिन हां, यदि आपलोगोंका जन्म मोहर्रमी नक्षत्रमें ही हुआ हो तो उपाय ही क्या है ? जाकर आंसू बहाइये खूब बहाइये। मैं मना नहीं करता।'

१५२२६

दुनियां भी बड़े घपलेकी जगह है। सेव और बेल एक ही टोकरीमें मौजूद हैं—विद्वान् भी हैं, गँवार भी हैं। और मजा यह देखिये कि विद्वान् गँवार बनकर रहना चाहते हैं और गँवार विद्वान् बनकर। 'इण्डियन पिनलकोड' में इस व्यवसायको रोकनेके लिये कोई प्रतिबन्ध भी नहीं है। डिग्रीधारी गँवार बने फिरते हैं और गँवार विद्वत्ताकी धाक जमा रहे हैं, लेकिन चालान होता ही नहीं।

ऐसी विकट समस्यामें मैं अपनेको विद्वान् घोषित करूं या गँवार, समझ ही में नहीं आ रहा है। विद्वान् कहता हूँ तो परिचित महानुभाव कह उठेंगे कि देखो "गधा" कैसी गायकी खाल ओढ़ रहा है, और गँवार कहता हूँ तो अपरिचित कहेंगे कि समाचार-पत्र जैसे मैदानमें गँवारकी जरूरत क्या? जान सांसतमें पड़ी है। जल्दीमें फैसला गड़बड़ न हो जाय इसलिए इस मसलेको यहीं पर दफनाकर मैं इस समय अपनी असाधारण प्रतिभाका ही परिचय आपलोगोंको दे रहा हूँ। आपलोग एक आनरेरी मजिस्ट्रेटकी हैसियतसे विचार कीजिये कि मैं वास्तवमें विद्वान हूँ कि गँवार।

बात यह है कि १५२२६ नम्बर जो मैंने ऊपर शीर्षकका नाम दिया है वह न तो किसी टेलीफोनका नम्बर है और न किसी मोटरकार का। यह नम्बर तो एक मनुष्यका नाम है और उस 'जनसूची, (पब्लिक लिष्ट) से लिया गया है जो भविष्यकी कोखमें

शिशुके समान बढ़ रही है। कहना न चाहिये, परन्तु कहना पड़ रहा है कि इस 'सूची' के प्रसव होते ही भारतमें एक कायापलट आ धमकेगा। उस समय न तो रामलालका नाम सुन पड़ेगा और न श्यामलालका। सभी महानुभावोंके नाम होंगे इस प्रकार १५२२६, ८८३१३, २०२०३ आदि-आदि।

आप आश्चर्य भले ही करें परन्तु इस 'जन-सूची' के अनुसार सम्पूर्ण भारतवर्षमें एक नये विभागकी वृद्धि हो जायगी। हेड आफिस तो दिल्लीमें रहेगा, परन्तु इसकी शाखाएं प्रायः प्रत्येक जिलेमें होगी। इन शाखाओंके आफिसोंका कर्त्तव्य यह होगा कि ये प्रत्येक मनुष्यका नम्बरोंमें नामकरण करें।

जैसे ही किसीके पुत्र उत्पन्न होगा घरवालोंको नामके लिये जिलेके आफिसको दरख्वास्त देनी होगी।' जिलेका आफिस 'जन-सूची' के अनुसार घरवालोंको इस बातकी सूचना देगा कि श्रीमानजी आपके पुत्रका नम्बर········ है। इसी प्रकार जब किसीकी मृत्यु होगी तो जिलेका यह विभाग 'जन-सूची' से वह नम्बर हटा देगा।

आप लोग अपने स्वभावके अनुसार पूछ सकते हैं कि आखिर इससे लाभ ?

भाई साहब! लाभ न पूछिये। सब लाभ ही लाभ तो हैं। आप जानते हैं कि देशकी मर्दुमशुमारी जब होती है तो न जाने कितने रूपये नष्ट होते हैं, परन्तु देशकी आबादी कितनी है इसका वास्तवमें पता नहीं चलता है। पण्डित गीताकिशोरजी आजकल कलकत्तेमें हैं और मर्दुमशुमारी हो रही है तो गिन लिये गये, परन्तु संयोगसे वे अपने देश इटावा के लिए रवाना हो जाते हैं। जब वहाँ पहुँचते हैं तो पता लगता है कि वहाँ भी मर्दुमशुमारी हो रही है। शास्त्रीजी लाख कहते है कि मेरी गिनती हो गयी है

परन्तु वहाँके गिननेवाले कह देते हैं कि, साहब हमें क्या मालूम। सरकारी आर्डर है, हम तो गिनेंगे जरूर। शास्त्रीको मजबूर होकर कह देना पड़ता है कि अच्छा भाई गिन लीजिये।

यही नहीं परसों वे पञ्जाब पहुँचते हैं और फिर बम्बई जाते हैं, परन्तु यह बात मानी हुई है कि वे जहाँ जायँगे गिने जायँगे। परिणाम क्या होता है कि शास्त्रीजीका शरीर एक और गिने गये चार। भला इस प्रकार मर्दुमशुमारीकी संख्या ठीक उतरेगी कैसे? गिनती समाप्त होते ही पुत्र उत्पन्न हुआ लेकिन गिननेसे छूट जाता है।

लेकिन जिस समय यह जन-सूची तैयार हो जायगी इस प्रकारकी कोई गड़बड़ी न हो सकेगी। मर्दुमशुमारीकी एक तारीख १ जनवरीको निश्चित रहेगी और उस दिन सभी जिलोंके ये विभाग तारद्वारा हेड-आफिसको सूचित कर देंगे कि उनकी सूचीका टोटल नम्बर यह है। बस, सबका टोटल करके दूसरे ही दिन पत्रोंमें प्रकाशित हो जायगा, देशकी जन-संख्या इस समय इतने करोड़ है।

फिर यह भी तो है कि मान लीजिये आपके एक मित्र हैं यदु-नन्दनजी मिश्र। आपको आज कई दिनोंसे उनकी आवश्यकता है, परन्तु घरपर जाकर बार-बार लौट आते हैं और भेंट नहीं हो रही है। आज आप कलकत्तेके हरीसन रोडपर जा रहे हैं कि सहसा आपको दिखाई पड़ा कि मिश्रजी तीस-चालिस कदमकी दूरीपर जा रहे हैं। आपका धीरज छूट जाता है। गँवारपनकी परवाह न कर आप पुकारने लगते हैं, मिश्रजी, मिश्रजी। यदुनन्दन जी मिश्र खड़े हो जाते हैं। परन्तु श्रीमान् यदि आप ध्यानसे देखें और पता लगायें तो आपके इस प्रकार चिल्लानेसे प्रायः सभी मिश्र समुदाय खड़ा आपको देखता होगा। इसलिये कि कहीं आप उनके परिचित तो नहीं हैं और उन्हें पुकार रहे हैं। कहिये

कितना अनर्थ हुआ। एक मिश्र शब्दने कितने ही भलेमानुषोंका समय नष्ट किया। किन्तु 'जन-सूची' के अनुसार जब यदुनन्दन मिश्रका नम्बर होगा १५२२६ तो आप भी पुकारेंगे १५२२६ जी। उस समय न तो नं० १५२८५ नामका व्यक्ति खड़ा होगा और न १५२२७ का।

इसके अतिरिक्त आप चिट्ठियोंमें पता लिखते हैं तो इस प्रकार--

पास—'प्रेम-प्रचुर' जी चित्रकार
मुहल्ला—माशूकोंकी सराय,
१३, नं० यारकी गली, बनारस।

लेकिन जरा गौर करनेकी बात है। कितना अमूल्य समय नष्ट हुआ। 'जन सूची' बन जानेपर आपको यह सब नहीं लिखना पड़ेगा। आप उस समय केवल नम्बर ही से काम चलावेंगे। पतेमें केवल लिखना पड़ेगा—'८८३१३, बनारस।' यह काम पोस्ट आफिसवालोंका होगा कि वे अपने यहाँकी "सूची" के अनुसार पत्र माशूकोंकी सरायमें दे आवें। यदि 'प्रेम-प्रचुर' जी बनारसके निवासी नहीं हैं तो जिसके यहाँ ठहरे होंगे उसका भी नम्बर होगा—८८३१३ मार्फत ४३३५७ बनारस।

एक उदाहरण और देखिये। वैद्यों, बुकसेलरों अथवा इसी प्रकारके अन्य पेशावालोंको आवश्यकता पड़ती है नामी एवं पढ़े-लिखे महानुभावोंके पतेकी, जहाँपर वे अपना सूचीपत्र भेज सकें। परन्तु पतोंका पता नहीं लगता। विवश होकर कोई न कोई हथकण्डा फेंकना पड़ता है। जैसे-'जो महानुभाव दस पढ़े लिखे महानुभावोंका नाम हमारे पास भेजेंगे उन्हें एक रङ्गीन आर्ट पेपरपर छपा कलेण्डर मुफ्त भेजा जायगा।' अब होता यह है कि कितने ही भाई धोखा दे जाते हैं। सोचते हैं भगवान तो है नहीं,

उसे पता कैसे लगेगा कि ये नामधारी विद्वान नहीं हैं। बस, दस पढ़े लिखे विद्वानोंके बजाय दस गँवारों ही के नाम भेजकर कलेण्डर ले लेते हैं। वैद्य महोदय सूचीपत्र भेजते हैं। परन्तु वहाँ उस नामके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर।' परिश्रम और खर्च व्यर्थ।

लेकिन जिस समय छपी हुई 'जन-सूची' हो जायगी खास नम्बरोंके सामने परिचय रहेगा। वैद्य लोग सूचीके अनुसार शहर और नामका नम्बर लिखकर सूचीपत्र भेजते चले जायँगे। न तो कलेण्डर मुफ्त देने पड़ेंगे और न परिश्रम व्यर्थ होगा।

यह भी ध्यान रहे कि इन नम्बरों में नाम होने हीसे कुछ न होगा। कानूनके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिको अपने नामका नम्बर पीछेकी ओर टोपी, कमीज या कुरतेपर लगाये भी रहना पड़ेगा। जो बिना नम्बरका दिखाई पड़ेगा, चालान किया जायगा।

मैं इस समय यह भी बता देना चाहता हूँ कि पाकिटमारी वर्ती समयसे काफी कम हो जायगी, क्योंकि जैसे ही कोई पाकिट मारकर भागेगा आप कमसे कम इतना तो कर ही लेंगे कि पीछेका नम्बर नोट करलें।

उससे भी बढ़कर एक सुविधा यह होगी कि मान लीजिये कि सड़कपर कोई स्त्री या पुरुष आपको ऐसा दिखाई पड़ता है कि आप बहुत अधिक आकर्षित हो जाते हैं और इच्छा होती है कि जानकारी प्राप्त करें, परन्तु सभ्यता इस बातके लिये आपको अवसर नहीं देती कि आप सड़कपर कोई बात-चीतका सिलसिला जमावें। अतः मन मसोसकर रह जाते हैं।

परन्तु नम्बर हो जानेपर जब ऐसी स्थिति आयेगी आप पीछेसे जाकर चुप-चाप उस समय केवल नम्बर नोट कर लेंगे। घर आकर 'जन-सूची' में पता देखेंगे और फिर आपकी जो कुछ इच्छा होगी आसानीसे पूरी हो सकेगी।

इसी प्रकार और भी बहुतसे लाभ हैं परन्तु अभी सब बतला देनेसे लाभ क्या ? यह बात मानी हुई है कि आपलोगोंके मनमें इस समय अनेक गलतफहमियोंका बवण्डर उठ रहा होगा परन्तु वे व्यर्थ हैं। यह तो अभी विस्तृत स्कीमका संक्षिप्त रूप है। वाद्-विवादके बाद जब यह स्कीम तैयार करके काममें लाई जायगी तब सारी गलतफहमियोंका खण्डन तो हो ही जायगा, उपयोगिताएं हजार गुनी बढ़ जायँगी।

आपलोग जानकर प्रसन्न होंगे कि मेरे ही पास ऐसी अनेक सूझें हैं, जिनके अनुसार यदि कार्य किया जाय तो भारत-राष्ट्रका नव-निर्माण एक वर्षमें हो सकता है। कदाचित् आपको पता न होगा कि यह मेरी सूझोंका ही परिणाम है कि अनेक महानुभाव जिन्हें किसी समय पतंग लड़ाना न आता था आज-कल आँखें लड़ा रहे हैं। अतः यदि सम्पूर्ण पेश कर दूँ तो भारत बहुत शीघ्र उत्थानकी चरम-सीमापर पहुँच जाय और संसार देखकर चकित हो जाय, परन्तु नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज सुने कौन ? यहाँ तो मुल्लाकी अजाँ सुनकर भी जाड़ेमें चारपाई छोड़नेका जी नहीं होता।

सकल-ज्ञान-सागर

कौन नहीं जानता कि दक्षिण भारतके पूर्वमें हिन्द-महासागर है तो पश्चिममें अरब सागर, किन्तु जब आपका मन आनन्द-सागरमें हिलोरें ले रहा होगा तब आवश्यकता आ पड़ती है श्रीलल्लू लालजीके प्रेम-सागरकी। विश्राम-सागर, सुख-सागर, हिन्दी-शब्दसागर और चिकित्सा-सागर आदि आदिकी चर्चा करना भी इसी समय न्याय-संगत जान पड़ता है, परन्तु अभाव है समय और स्थानका। अतः अब मैं आपलोगोंको उन सागरोंका परिचय देने जा रहा हूँ, जिसके प्रकाशित होते ही संसारको दाँतों तले उंगली ही नहीं, समूचा हाथ दबाना पड़ेगा।

—"क्यों?"

इसलिये कि इसके लेखक हैं 'भजुगोविन्दम्' पुस्तकके प्रणेता बाबा 'मूढ़मते' के परम शिष्य स्वामी 'बौड़मानन्द'। एक एक बात पतेकी कह कर लापता हो जाना इनकी विशेषता है।

लोक नीति आल्हाके 'मथा समुन्दर सब देवनने चौदह रतन लीन निकराय' अथवा पुराणोंके अनुसार देवताओंने जब सागर मथा था तब चौदह रत्न निकले थे, परन्तु मैंने इस सकल-ज्ञान-सागर' में केवल एकही डुबकी लगाई और चौदहसे कई अधिक रत्न हाथमें आ गये। कैसे मजेकी बात है कि न तो मथानी ढूँढ़नी पड़ी और न पानी ही गन्दा करना पड़ा। विश्वास न हो तो आप भी इन रत्नोंको देखिये। लेकिन देखिये, चुराइयेगा नहीं।

हाँ, एक बात और है। स्वामी जीके विचारके अनुसार यह पुस्तक तीन खण्डोंमें प्रकाशित की जायगी। प्रथम खण्डमें केवल आई हुई सम्मतियाँ, द्वितीय खण्डमें भूमिका और तीसरे खण्डमें पुस्तक, यदि प्रकाशनका प्रबन्ध हो सका तो...।

आये दिन (गयी रातों में भी) जिसे देखिये वही कलाकार बननेकी चेष्टा कर रहा है। कोई नृत्यमें कला खोज रहा है, तो कोई साहित्यमें। परन्तु सौ बातकी एक बात तो यह है कि 'कला कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो सर्वत्र मिल सके। कला तो संसार की केवल दो ही वस्तुओं में है:—

१—सखी कलावती अथवा चन्द्र-कला में।

२—कलाकन्द में।

\+ + +

अनेक सज्जन इसलिये बहुत प्रसन्न रहते हैं कि उन्हें शिक्षित पत्नी पानेका सौभाग्य प्राप्त है। परन्तु यदि इन महानुभावोंको यह पता लग जाय कि जो सब परीक्षाओंमें पास होता है वह "अग्नि परीक्षा' में अवश्य फेल हो जाता है-- तो कदाचित् पपीता-सा मुँह लटका दें।

\+ + +

दीर्घ-जीवनकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्ति प्रायः सभी उपाय करते हैं, परन्तु यदि दर्पणमें नित्य बार-बार अपना रूप निहारा करें तो उनकी अभिलाषा बहुत अंशोंमें पूरी हो सकती है। पुरूषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके दीर्घजीवी होनेका यही रहस्य है।

\+ + +

हम और आप यदि थोड़ा-थोड़ा भी ध्यान दें और अपनी-

अपनी जिम्मेदारी समझने लग जायँ तो गँवारों की संख्या संसारसे काफी कम हो सकती है।

ज्योतिष-शास्त्रका सिद्धान्त है कि जिसके कान लम्बे होते हैं वह बहुत बुद्धिमान होता है। कदाचित् यही कारण है कि पाठशालाओं में कान खींचने की प्रथा पायी जाती है।

\+ + +

लाल झण्डे और लाल रङ्गकी बत्तियाँ खतरे की निशानी क्यों समझी जाती हैं? इसलिये कि 'लिप-स्टिक' का प्रयोग करने वाले तथा 'पान खाके लबोंको रचानेवाले' खतरनाक होते हैं। बस यहींसे लाल रङ्ग खतरेकी निशानी समझा जाने लगा।

\+ + +

कुछ गवैयोंका गला इतना सुन्दर होता है कि इच्छा होती है, काट लें, परन्तु कुछ गला ऐसा कड़ा होता है कि इच्छा होती है, घोंट दें।

\+ + +

जर-जमीन और जोरू बुराइयों की जड़े हैं, परन्तु हम लोग भी कितने जड़ हैं कि इन जड़ों में चिपके रहनेमें ही आनन्द का अनुभव करते हैं!

\+ + +

सुख और शक्तिके खोजनेवाले महात्मा बुद्ध जैसे महापुरुष अब कहाँ हैं? अब तो कोई विज्ञापन खोज रहा है, तो कोई कुछ। बस, इसी कुछमें सब कुछ समझ लीजिये।

\+ + + +

मर गया 'कोलम्बस' जिसने नई दुनियाँ का पता लगाया था। अब तो खुदा सलामत रखे पोस्टमैन भाइयों को, जो बिना

प्रकार हमारे और आपके घरों का पता लगा लेते हैं, अन्यथा सारी डाक से 'डेड-लेटर आफिस' भरा ही रहता।

\+ + + +

यदि आप बुद्धिमान हैं तब तो कोई बात ही नहीं है, परन्तु यदि आप बुद्धिमान बनना चाहते हैं तो आपको स्वीकार करना होगा कि हम परम गँवार हैं। यदि आप यह स्वीकार नहीं करते हैं तो आप क्या हैं, इसे आपसे अधिक मैं, और मुझसे अधिक आपलोग जानते हैं।

\+ + + +

पैसे का प्रभुत्व देखना चाहते हैं तो किसी रेलवे स्टेशनपर जाकर देखिये। जिसे दिल्लीसे प्रयाग जानेकी भी योग्यता नहीं है उसे कलकत्ते तकका टिकट बिना किसी विचारके धड़ाधड़ बाँटा जा रहा है।

\+ + + +

आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। गान्धी आश्रम, विधवाश्रम एवं अनाथाश्रम आदि-आदि आश्रमों को यदि आप गिन रहे हैं तो आपकी सबसे बड़ी भूल है।

\+ + × +

कोई भी हो—बड़े काम करनेसे ही बड़ा होता न कि दही-बड़े खानेसे।

\+ + + +

कौन कहता है कि आजकल दिन बुरे हैं? यदि दिमागमें गोबर न भरा हो, तो मनुष्य १००१ रुपये एक दिन में पैदा कर सकता है। यदि इस प्रकारका शीर्षक किसी विज्ञापनका हो,

तो मनोविनोदके लिये इससे बढ़कर और कौन सामग्री हो सकती है।

\+ + +

'तुलसीदास' की रामायणमें साधारण नीतिका अभाव है।' यदि आप इस वाक्यसे सहमत नहीं हैं तो बतलाइये कि क्या इस प्रकारकी साधारण नीतिकी कोई चौपाई आप प्रमाणार्थ पेश कर सकते हैं:—

कुत्ता कबहुँ जुठारिय टाठी। नीति कहइ अस मारिय लाठी।'

\+ + +

राधेश्यामी रामायणकी तर्ज भी सब छन्दोंके कान बिना चाकूके काट सकती है। यदि उसकी शब्दावली बकौल मुत्तफ़िक़ कवि के इस प्रकार रहा करे:—

'पूत कपूत कहीं होगा, छाती पर मूँग सदा दलता।
राजन्! है ख्याल गलत तेरा, गदहे से नाम नहीं चलता।।'

दोहा—

राजन बोले ठीक है, किन्तु यही है बात।
गुरु होकर हैं आप भी, पूरे सत्तो-सात।।

\+ + +

"प्रत्येक मनुष्यों को 'प्रेम-बीज' ऐसी ही जगह बोना चाहिये जो जमीन उसकी मरजीके मुताबिक हो। परन्तु बीज बोनेके बाद आवश्यकता होती है अच्छी तरह देख-भाल रखनेकी। बहुधा देखा गया है कि देख भाल न रखनेकी लापरवाहीसे ही फसल तैयार होनेपर दूसरे काट ले गये हैं।"

\+ + +

कबीर साहब का कहना है कि जहाँ दया वहीं धर्म है,

जहाँ लोभ है वहीं पाप है, जहाँ क्रोध है वहीं काल है और जहाँ क्षमा है वहीं भगवान हैं। परन्तु यह वाक्य पूरा नहीं है। आगे लिखना चाहिये था कि जहाँ पाण्डे हैं वहीं यजमान हैं।

+ + +

'अंग्रेज विद्वान 'एमर्सन' साहबका कहना है कि स्वर्गके विषयमें मेरी धारणा यह है कि वहाँ कोई मिथ्या नाटक नहीं होते होंगे।' कारण यही हो सकता है कि या तो यहाँ के मिथ्या नाट्यकार वहाँ न जाकर नरक चले जाते होंगे अथवा रिहर्सल करनेके लिए स्थानका अभाव होगा।

+ + +

विवाह मनुष्यके लिये आजीवन कालापानी है, परन्तु चुल्लू भर पानीमें डूब मरनेवाले जीवनसे यह जीवन लाख दर्जे अच्छा है, यह सोचकर विवाह करना ही पड़ता है।

कसौटी

आज रविवार था। आज हीके दिन हमारे क्लबका साप्ताहिक अधिवेशन होता है। घड़ीने अभी सात भी न बजाये थे कि कमरा ठसाठस भर गया। देर थी सभापति पं० गीता-किशोर शास्त्रीकी। चर्चा छिड़ी ही थी कि वे भी आ पहुँचे।

अभी कमरेमें पहिला पग रखा था कि पहिला प्रश्न आपने लाला गोशनाई लाल जीसे किया। "लाला जी आप जब देशसे चले थे तो किस स्टेशनपर कलकत्तेके लिये टिकट खरीदा था?"

'क्यों पण्डित जी?'

'इसलिये कि वहाँके स्टेशन-मास्टर एक लाला साहब थे वे अभी हैं कि बदल गये?'

जरा आपके दोनों प्रश्नोंपर गौर कीजिये। एक ओर किस स्टेशनसे रेल गाड़ीपर सवार हुए थे और दूसरी ओर वहांके स्टेशनमास्टरको जानते भी हैं। फिर भी हमलोग चुप रहे। लाला जीने ही उत्तर दिया—'हाँ अभी हैं। क्या पण्डित जी आप उन्हें जानते हैं?"

'जानता क्यों नहीं।' उनका तो नाम बड़ा सुन्दर है।'

'हाँ उनका नाम है लाला रूपनारायण। बड़े भले आदमी हैं। अपना तो उनसे रिश्ता भी है। वे हमारे फूफा साहब के साढ़ू के साले के लड़के हैं।'

अब पण्डित जी हम लोगोंकी ओर मुखातिब हुए। भाषण प्रारम्भ हो गया—

"सज्जनों! हमारे और लाला जीके लघु-सम्बादसे आप लोगोंको कुछ आश्चर्य हुआ हो तो स्वाभाविक ही है ये किस स्टेशनसे टिकट लेकर कलकत्ता आये थे, इसे न जानते हुए भी स्टेशनमास्टरको मैं कैसे जान गया, यह आश्चर्य नहीं तो और क्या है? लेकिन नहीं, हम और आपलोग यदि बुद्धिसे काम लें तो सचमुच उन कामोंको कर सकते हैं जो मेस्मेरेजमवाले अभी शताब्दियोंतक न कर सकेंगे। आज इसी छोटेसे उदाहरण द्वारा हम इस रहस्यपर प्रकाश डालना चाहते हैं।

"आप लोगोंने भूगोलकी किताबोंमें यह अवश्य पढ़ा होगा कि जहाँका जलवायु जैसा होता है वहाँ उसी प्रकारके पशु-पक्षी भी पाये जाते हैं। अमेरिकाके कँगारुओं, आफ्रीका और अरबके रेगिस्तानाके शुतुर्मुर्गों तथा भारतकी गौरैयों आदिका एक बार स्मरण कीजिये। अब विश्वास है कि आप लोग मेरी बातमें आपत्ति करनेकी निन्दनीय मनोवृत्ति अपने-अपने हृदय-से अवश्य उसी प्रकार निकाल देंगे जिस प्रकार पद-सरोजके तलवोंसे बबूलका काँटा और तरकारियोंके ढेरसे सड़ा गला भाँटा।

यहाँपर मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि आपलोग मेरे भाषण-सिन्धुमें चोटीतक मग्न होकर अपने अस्तित्वके मिटाने-की भूल न करें। ऊल जलूल बातोंमें भी बातोंका मजा दिखा-देना प्रत्येक वक्ताका काम नहीं है। और जो आज नहीं है वह हो ही कैसे सकता है? जिसे कहना न चाहिये उसे कहनेकी आवश्यकता ही क्या है।

लेकिन आपलोग क्या जानते हैं? अब यही प्रश्न है। जब प्रश्न है तो कुछ-न-कुछ उत्तर भी अवश्य होगा। परन्तु भाइयो उत्तर देनेका अभिप्राय यह भी तो नहीं है कि हम आपसे बड़ों को उत्तर दे बैठें। मुँह-तोड़ उत्तरकी चर्चा इस

समय अप्रासंगिक होगी नहीं तो मैं इसपर भी थोड़ा प्रकाश अवश्य डालता।

लोग कहते हैं और मैंने सुना भी है कि भङ्गके नशेमें मनुष्य कभी-कभी अनाप-शनाप बकने लगते हैं। परन्तु आपलोग तो मेरे भङ्ग-प्रेमसे अच्छी प्रकार परिचित हैं। क्या मैं आज अनाप-शनाप बक रहा हूँ ? तब फिर क्यों न भङ्ग-प्रेमियोंपर दोष लगाने-वालोंके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया जाय। मैं तो इन शत्रुओंको आदमी नहीं समझता। उनकी गणना तो पशु पक्षियों.........

हाँ, ठीक है ! जल-वायुके अनुसार ही संसारमें पशु-पक्षी पाये जाते हैं। लेकिन क्या आप लोगोंने उस पक्षीका भी नाम कभी सुना है जो प्रत्येक स्थानपर पाया जाता है ? जलवायुका असर ही उसके ऊपर नहीं पड़ता। यदि आप लोग आज्ञा दें तो मैं आज उस पक्षीका नाम बता दूँ। अच्छा तब सुनिये। उस पक्षीका नाम है पक्ष-पात पक्षी।'

बस यदि हमलोग इस पक्षीका नाम और गुण समझ लें तो स्टेशन जाने बिना स्टेशनमास्टरका पता आसानीसे लगाया जा सकता है। अभी-अभी मैंने लाला जीसे पूछा था कि उन्होंने किस स्टेशनपर टिकट खरीदा था। मैं दिलसे कहता हूँ कि प्रश्नका जड़ यही पक्षपात पक्षी था। मुझे पूरा विश्वास था कि इस पक्षीने रेलवे विभागमें अपना घोंसला जरूर बनाया होगा। अन्यथा लाला जीको इतनी दूरका टिकट कदापि न मिलता। इन्होंने हवड़ाका टिकट माँगा होगा और लाला ही होनेके कारण स्टेशनमास्टर ने इन्हें टिकट दे दिया। यदि वहाँका स्टेशनमास्टर मैं होता तो लाला जी कानपुरके रहनेवाले हैं

अतः योग्यता के अनुसार इनको प्रयाग तकका टिकट देता इससे आगे कदापि नहीं।

आपलोग स्वयं सोचिये। लालाजीने पक्षपात पक्षीकी कृपासे टिकट तो पा लिया। आ भी गये। परन्तु इन्होंने क्या किया? यही न कि मुझ जैसे साहित्य सेवीकी पगड़ी उछालनेका असफल चेष्टा की।

स्थानीय 'पपीता पत्रिका' में जो लेख इन्होंने मेरे विरुद्ध लिखा है या यों कहिये कि जो जहर उगला है, उसके प्रति आप लोगोंको इनपर तरस आता है कि नहीं? हमें तो इनकी बुद्धि पर बड़ी दया आई। अच्छा होता कि ये इस बुद्धिको सत्कार्यमें लगाते और कुछ नहीं तो मानसकी टीका ही करते। आपलोग इन्हें एकबार फिर अच्छी तरह देखिये और फिर बताइये कि क्या इनकी शक्ल सूरत इस बातकी आशा दिलाती है कि ये इस जन्ममें साहित्यिक हो सकते हैं?

सभापति जी आज कितनी भंग पीकर आये थे कि कुछ समझमें ही नहीं आ रहा था कि इन्हें आखिर कहना क्या है। लालाजीकी शक्ल-सूरत पर जो बात उन्होंने कही उससे बड़ी बेचैनी फैली। श्री 'गुप-चुप' जी से न रहा गया वे क्षमा मांगते हुए बोले:—

पण्डितजी! आपको भाषण देनेके लिये इसलिये कहा गया था कि सदाकी भाँति कुछ मनोरंजन करें न कि आप अपने शत्रुओंसे बदला चुकायें।

हमें खेद है कि आपने एक सदस्यका अपमान करना ही आपने अपना ध्येय बनाया है। लालाजीने आपपर एक लेख 'पपीता-पत्रिका' में लिखा है तो आप इनपर चार लेख 'कैथा-पत्रिका' में लिखिये। लेकिन इसका क्या अर्थ होता है कि आप सभाके भीतर इनका अपमान करें?

पण्डितजीने गम्भीरतासे कहा—'गुप-चुप'जी आप बैठ जायँ, मैंने सज्जनों कहकर सभीको सम्बोधित किया है और आपको भी उन्हींमें शुमार किया है। आप मुझे अपने विरुद्ध और कुछ सोचनेका अवसर न दें। मैं मनोरंजन ही पर भाषण दे रहा हूँ। यह तो कसौटी थी कि आपलोगोंमें अपनोंके प्रति कितना प्रेम है। मैं आपके इस प्रकारके व्यवहारसे नाराज हूँ, लेकिन हृदयमें एक प्रसन्नता हिरणकी तरह चौकड़ी भर रही है। मुझे हर्ष है कि आपलोग अपने क्लबके सदस्योंके विरुद्ध कुछ कहनेवाले अपने सभापतिके सामने भी खड़े हो सकते हैं। मैं लालजीसे इस कटु-भाषणके लिये क्षमा माँगता हूँ। अपमान त्यागकर सदस्योंके मनो-रंजनार्थ अपनेको अर्पण करनेवाले लालाजीको मैं हृदयसे धन्य-वाद देता हूँ। अब मैं अपने विषयपर पुनः आता हूँ।

हाँ, तो मैं यही कह रहा था न, कि बिहारीलालजी कवि थे। और विशेषकर शृंगारी कवि थे। शृंगारी कविका अर्थ यह भी नहीं है कि वे शृंगारोंसे प्रेम करते थे और स्वयं नायिका बना करते थे। अभिप्राय केवल यह है कि शृंगार रसकी कविता ही उनकी लेखनी अधिक टपकाती थी। एक मिसको देखकर उन्होंने कितना सुन्दर कहा था—

छुटी न सिसुताकी झलक, गलकि गये सब अंग।
रंग-ढंग लखि रहि गये, सुकवि 'बिहारी' दंग॥

शरीर छोड़नेके बाद जो उन्होंने अपने सीनेपर उद्गार फेंके थे उन्हें भी मैं बता देना चाहता हूँ। कफन उठाकर जब देखा गया था छाती पर यह दोहा लिखा था—

असमयकी कहिये कहा, गहि न लेत जो काल।
मिसकी मोटर सों कचरि, मरत बिहारीलाल॥

तो सज्जनों ! समय अधिक हो चुका है। दूसरे दिन मैं इनकी कवितापर यथेष्ट प्रकाश डालूँगा। मुझे आपलोग धन्यवाद देकर आजकी कार्यवाही समाप्त करें।

गड़बड़ाध्याय

आँखों देखा हो, न देखा हो। कानों सुना हो न सुना हो। कहीं सूचना पढ़ी हो, न पढ़ी हो। मित्रोंने चर्चा की हो, न की हो। परन्तु सच मानिये, विश्वास कीजिये आपका वही साप्ताहिक 'स्वर्ग' जिसके लिए अब तक टकटकी लगाये देख रहे थे, छप गया, निकल गया, करोड़ों ग्राहक बन चुके हैं, बन रहे हैं और बननेकी सम्भावना है। अभीतक नहीं पढ़ा है, तो अब पढ़िये और अब भी न पढ़ना हो तो फिर कभी पढ़ना परन्तु ग्राहक बनिये जरूर।

क्यों कि—

यही एक पत्र है जिसमें आप एक साथ ही पढ़ सकेंगे—

तड़फती कविताएं,

लुढ़कते लेख,

नमकीन नाटक,

अधूरे उपन्यास,

द्रौपदी के चीरसे भी लम्बी कहानियाँ,

गाली-गलौज से भरी आलोचनाएँ,

कवियोंकी ऊट-पटांग कविताएं,

और लेखकोंकी घर-गृहस्थी का हाल।

हम यह नहीं कहते कि आपने पत्र नहीं पढ़े हैं, परन्तु तनिक सोचिये 'स्वर्ग' में जो विशेषताएं हैं, वे और किस पत्रमें हैं? इसका नेत्र-दूषक टाइटिल, सड़ियल कागज गैरजिम्मेदारी से ओत-प्रोत लेख जिस समय आप देखेंगे दाँतों तले उँगली ही नहीं समूचा हाथ दबाना पड़ जायगा।

सबने तो मुक्त कंठसे प्रशंसा की ही परन्तु हम भी कहे देते हैं कि एक 'स्वर्ग' ही है जिसमें—

छपाई—सफाई है साढ़े बाइस।

अक्षर—बाबा आदमके जमाने के टूटे टाइपोंमें।

चित्र—वेश्याओंके।

समाचार—व्यभिचार के।

विज्ञापन—अश्लील परन्तु आपके मतलब के, कि जिनको देख कर आपकी गर्दन शर्म से झुक जायगी। अतः 'साप्ताहिक स्वर्ग' आपका स्वागत करता है।

यदि लेखक हैं तो इसमें अपनी कविता छपा कर अपना और अपने कुलका यश बढ़ाइये।

यदि लेखक हैं तो इसमें लेख देकर अपना लोक और परलोक बनाइये।

यदि सम्वाददाता हैं तो झूठे समाचार प्रकाशित कराकर नाम कमाइये।

यदि व्यापारी हैं तो इसमें विज्ञापन निकलवा कर 'स्वर्ग' का बिल चुकाइये।

और यदि कुछ भी नहीं हैं तो पाठक बनकर आनन्द लीजिए। दुनियाँका सुख लूटिये। 'स्वर्ग' आपका है और आप स्वर्गके हैं। पुत्र तक का मुण्डन-छेदन हो तो कवि 'स्वर्ग' के द्वारा बुलाइए। बीबी खो जाय तो इश्तहार 'स्वर्गमें दीजिये। नौकरी न मिलती

हो तो उपवास स्वर्ग कार्यालयमें आकर लीजिये और कहीं मारे-पीटे जायँ तो समाचार इसमें छपाइये। आनन्दका विषय यह है कि किसी प्रकार की फीस नहीं।

और यही नहीं शायद आपने सुना न होगा। यही साप्ताहिक है जो ग्राहकोंको सालमें एक-दो नहीं पूरे दस विशेषांक देता है और विशेषांक भी कैसे 'सुख-सागर' जैसे मोटे और खुर्दबीनसे भी न दिखाई पढ़ने वाले पन्नों पर! आजही ग्राहक बनिये और इस साल लीजिये—

सौरी अंक
बालक-अंक
युवक-अंक
वृद्ध-अंक
महिला-अंक
पुरुष-अंक
मैनेजर-अंक
कम्पोजीटर-अंक
कोकशास्त्र-अंक
बिच्छू-डंक-अंक

किन्तु-कुछ करनेसे पहले 'साप्ताहिक-स्वर्ग' के नियम जान लेने चाहिये जो कि इस प्रकार हैं—

१—'स्वर्ग' साप्ताहिक है, अतः सप्ताहके सात दिनोंमें से किसी दिन भी निकल सकता है।

२—आवश्यकता पड़ने पर महीने में ३० अङ्क भी निकल सकते हैं। एक भी निकल सकता है और नहीं भी निकल सकता है।

३—ग्राहकों और विज्ञापन-दाताओंका लिखा कुछ भी हो इसमें छप सकेगा।

४—वार्षिक मूल्य भी ३) है और एक अङ्कका भी दाम ३) है अतः वार्षिक ग्राहक हो जाने में ही सुभीता है।

५—प्रकाशनार्थ आये हुये लेख कागजके एक ओर भी लिखे जा सकते हैं और दोनों ओर भी। हाशिया छोड़ना न छोड़ना आपकी इच्छा पर है।

६—लेखोंके कार्यालयमें आ जाने पर फिर हम छापनेके लिए मजबूर हैं।

७—लेखोंमें किसी प्रकार की न तो काट-छाँट ही होगी और न संशोधन ही।

८—लेख, कविता, समाचार, आलोचना कुछ भी हो साथ में वापसी के लिये डाक-व्यय आना अनिवार्य है। परन्तु ध्यान रहे दस गुना डाक-व्यय आनेपर भी न तो रचना वापस की जायगी और न कोई उत्तर ही दिया जायगा।

९—लेख पत्रादि मैनेजर-'स्वर्ग' और रुपया सम्पादक-'स्वर्ग' के ही पतेसे भेजना ठीक होगा।

१०—वार्षिक चन्दा जमा होनेपर भी कार्य्यालय को वी० पी० भेज देनेका अधिकार है। अतः ग्राहकों को छुड़ा ही लेना चाहिये।

११—किसी ग्राहक को यदि किसी सप्ताह का अङ्क न मिले तो उत्तर के लिए डाक-व्यय भेज कर शिकायत कर देनी चाहिये परन्तु कार्य-बाहुल्य के कारण कार्यालय से फिर अंक अथवा पत्रोत्तर की आशा न करनी चाहिये

१२—ग्राहक नम्बर नहीं होता है अतः शिकायत करते समय ग्राहक-नम्बर खोजना बुद्धिमानी न होगी।

१३—किन्हीं भी महानुभावका नाम और पता यदि कार्यालय

को मिल जायगा तो हम सेवामें वी० पी० भेज देनेके लिये बाध्य हैं।

सम्वाद दाताओं के नियम—

१—संवाददाताओं को समाचारके साथ नाम और पता लिखने की आवश्यकता नहीं है।

२—अनर्गल और भ्रामक संवादोंको महत्त्व अधिक दिया जायगा।

३—व्यभिचारके समाचारों को भी तरजीह दी जायगी।

४—कार्यालयमें आ जानेपर फिर अनुरोध करने पर भी समाचार न तो वापस ही किये जायँगे और न छपनेसे ही रह सकेंगे।

५—बैरंग डाक से आये समाचार बैरंग ही वापस कर दिये जायँगे।

ग्राहकोंके नियम—

१—एक बार ग्राहक हो जाने पर फिर आजन्म ग्राहक रहना ही होगा।

२—ग्राहकोंका जो पता कार्यालयमें नोट हो जायगा फिर बदला न जायगा। अतः पोस्ट-आफिससे प्रबन्ध करना अथवा कार्यालय को लिखना 'अरण्य-रोदन' ही होगा।

३—वर्ष समाप्त होते ही ग्राहकोंको चन्दा भेज देना चाहिये क्योंकि जो काम करना ही है उसमें देर करना बुद्धिमानी नहीं है।

विज्ञापन-दाताओंके नियम—

१—'स्वर्ग' में विज्ञापन देनेसे पहिले खूब सोच-विचार लेना चाहिये, क्योंकि एकबार विज्ञापन दे देने पर फिर बार-बार उठा देनेके एक मास बाद तक विज्ञापन देना ही होगा।

२—विज्ञापनदाताओं को एक वर्षका चार्ज अग्रिम जमाकर देना होगा।

३—तिहाई-चौथाई तो क्या पूरे पत्रमें भी विज्ञापन देने पर भी किन्हीं विज्ञापन-दाता महोदय की सेवामें 'स्वर्ग' की कोई प्रति तब तक न भेजी जायगी जबतक वे ग्राहक भी न बन जायंगे।

४—विज्ञापन स्वीकार कर लेने पर तथा अग्रिम रूपया पा चुकने पर फिर विज्ञापन निकल रहा है कि नहीं इसकी जिम्मेदारी कार्यालय पर नहीं है।

५—अश्लील विज्ञापनोंको स्थान सहर्ष दिया जायगा और लिखा-पढ़ी करने पर रेट में कमी भी कर दी जायगी।

६—'स्वर्ग' में विज्ञापन देनेका अर्थ यह नहीं है कि वह आपके कार-बार को उन्नत ही करेगा। विज्ञापन छापनेवाले दूसरे होते हैं। और माल खरीदनेवाले दूसरे। अतः हम दोषी नहीं हैं।

७—विज्ञापन जिस रूपमें पहले दिया जायगा फिर उसी रूपमें ही देना होगा।

८—अन्य आवश्यक बातोंकी जानकारी के लिये लिखिये।

एजेण्टोंके नियम—

१—'साप्ताहिक 'स्वर्ग' एजेण्टोंसे तंग आ गया है, अतः एजेन्ट नहीं बनाये जाते और इसीलिये इस एक ही नियमके साथ अन्य नियमोंको समझ लेना चाहिये।

अतः शीघ्रता कीजिये। जल्दी कीजिये। बनिये। हम फिर कहे देते हैं ऐसा अवसर बार-बार नहीं आवेगा।

हाँ, यदि सेविंग बैंकमें आपकी एक पाई भी जमा नहीं है। यदि जीवनका बीमा आपने नहीं कराया है।

यदि जायदाद के नामपर आपके पास एक लंगोटी ही है।

तो ?

हमारी विनम्र प्रार्थना है कि अपने नाती-पोतोंके लिए कमसे-कम हमारे 'सप्ताहिक स्वर्ग' की एक फाइल तो छोड़ जाइये।

बस— इससे अधिक हम क्या कहें।

विनीत—

मैनेजर "सप्ताहिक स्वर्ग"

ह हा, हि ही, हु हू, हे है, हो हौ, हं हः

नया तमाशा

बात पुरानी तो है परन्तु इतनी पुरानी नहीं जितनी कि कुतुबमीनार। तुलसीदासने रामायण न लिखी हो यह बात भी नहीं थी, हाँ राधेश्यामी अभी हारमोनियम पर नहीं आयी थी। बिहारी सच्चे लंगोटेकी करामात दिखा चुके थे लेकिन अभी किसीने उनको पछाड़ा नहीं था। यदि भूलता नहीं हूँ तो 'ननद-भौजइया' और 'बांकी कटरिया' जैसे ट्रेक्ट भी अभी किसी प्रकाशकके यहाँसे नहीं प्रकाशित हुए थे। होलीके अवसरपर लोग 'कबीरों' और 'फागों' के भीतर देवताओंको भी कुछ न कुछ कह डालते थे लेकिन 'राधा स्वकीया थी या परकीया' ऐसे लेख मासिक-पत्रोंमें एक भी नहीं निकले थे।

मैं उन दिनों चीन में था। अफीम खाता था या नहीं इसका जिक्र करना छोटे मुँह बड़ी बात होगी, परन्तु यह तो कहूँगा ही कि मुझे साहित्यसे इतना प्रेम था जितना पत्रोंका विज्ञापन से। शिन-शुंग-शांग जो उन दिनों विश्व कवि समझे जाते थे मेरे पड़ोसी थे। जब कभी मैं उनसे अपने भारतके कवियोंकी बड़ाई करता वे पागल हो जाते थे। कितने ही बार उन्होंने भारत आनेका इरादा भी किया और जब तब मुझे प्रेरित भी किया कि मैं उनको अपने नामी कवियोंके दर्शन करा दूँ लेकिन ऊबकर मैंने ही रोक दिया। और यही नहीं, एक दिन तो साफ

यह भी कह दिया कि अब तो बहुतसे उनमें इस लोकमें भी नहीं हैं। बस उस दिनसे उन्होंने इधर आनेका विचार ही बदल दिया और शायद अब आयेंगे भी नहीं। अभी बड़े दिनकी छुट्टियोंमें उनका पत्र मुझे मिला जिसमें उन्होंने मुझसे भारतके साहित्यिक वातावरण पर पुनः कुछ विचार प्रकट करनेकी अभिलाषा प्रकट की थी। मैंने जो उत्तर दिया है उससे किसीका कोई विशेष मतलब नहीं है परन्तु सारांशमें मैंने यह लिख दिया है कि भारत अब अपनी पहलेकी अवस्थासे काफी उन्नति कर गया है। कवि और कविताओंमें जो डाँड़ा-मेड़ी हो गयी है वह संसारके इतिहासमें अमर रहेगी, हाँ, जमानेकी कमर भलेही लचक जाय।

मैंने यह भी लिखा है कि मैं स्वयं कवि हो गया हूँ। और सच बात तो यह है कि कवितामें खो गया हूँ। अनन्तमें लीन हो गया हूँ और इसीलिए कुछ लोग कहते हैं कि मैं साहित्य-विहीन हो गया हूँ। खैर इन बातोंसे भी किसीका कोई मतलब नहीं है अतः मैं इस प्रसङ्गको छोड़ता हूँ। लेकिन मेरा लिखना कहाँ तक उचित या अनुचित था इसका विचार साहित्यके सच्चे जौहरी करें। मैं तो केवल अपनी एक-आध कविता उनके सामने रखने का अधिकारी हूँ इस विषयमें कुछ कहनेका अधिकारी अगले जन्ममें भी नहीं।

'धुक धुकी-बन्द' पत्रिकाके मुख पृष्ठपर जो मेरी कविता प्रकाशित हुई है उसे ही लीजिये। देखिये कितनी जोरदार है। एक-एक लाइन मोटर बस और ट्रामसे मोरचा ले रही है।

बैठा अनन्त में देखो!
यह कौन चलाता ढेला।
नीचे आकर लग जाता,
जब तब प्रयागमें मेला?

किसके स्वप्नोंकी लड़ियाँ,
किसके वैभव की घड़ियाँ।
बिल्ली सी चाट रही हैं,
बैठी कविता की हँड़िया।

क्या यही वेदना क्रन्दन,
क्या यही हृदय स्पन्दन,
ऊषा के अपने कर से,
थोपा करता है चन्दन ?

सहसा जल उठी अरे यह,
किस कविके उरकी चटकल।
जो आज बुझाने दौड़ी—
रुनझुन कर छाया दमकल ?

कहिये कितनी स्वभाविकता है। चटकलमें आग लगाना और रुनझुनकर दमकल (फायर बिग्रेड) का दौड़ा देना हर एक कवि-का काम नहीं है। लेकिन सच बात तो यह है कि कवियोंको दूसरेके कवि होनेमें सन्देह सदैव रहता है और इसीलिए आज तक मेरी किसी भी कविताका महत्त्व किसीने न समझा। खैर मुझे तो लिखना है। कोई महत्त्व दे या न दे। पढ़े या न पढ़े।

पार्क क्लबके मुख पत्रमें प्रकाशित कविताका एक दूसरा उदाहरण पेश करता हूँ—

मूक वेदना मूक रही है,
धीरे धीरे फूंक रही है।
बचपनकी कुछ चूक रही है,
इसीलिये यह कूक रही है।

ले आई मधु मास,
पार्क की घास,
हार्स की रास,
इन्हीं दो में जीवन उल्लास।

खेद है कि मेरे लंगोटिया यार 'सन्देश' जी न रहे नहीं तो साहित्यिक जगतको वह सन्देश देते कि उथल पुथल मच जाती। उन्होंने खुले दिलसे कहा था "मैं जो पत्रिका शीघ्र ही निकालूंगा उसमें आपका समर्थन जी खोलकर करूँगा और साबित कर दूंगा कि गुदड़ीमें लाल खोजने वालोंमें मैं भी एक हूँ।

अब वे नहीं रहे। परन्तु उनकी एक बात मुझे आज तक याद है और उसके याद आते ही मुझे बहुत कुछ याद आ जाता है। बात यह थी कि उन्होंने एक दिन अपनी एक गुप्त बात भी मुझसे कही थी। वह यह कि अपने पत्रमें मेरा तो वे समर्थन करेंगे परन्तु उनका समर्थन किस रूपमें कहाँ पर किया जायगा ?

मुझे हर्ष है कि मैंने उनकी इस शंकाका बोझ स्वर्ग जानेके पहिले ही छीन लिया था और कह दिया था कि पत्र निकालकर विशेषांक' निकालने ही पड़ेंगे उनमें मुझे और मेरे अन्य मित्रोंको चाँस दीजियेगा। आपको साहित्यके कंगूरे पर बिठा दूँगा। हम दोनों ही अपने अपने वचन पूरे न कर सके परन्तु सन्तोष यही है कि वे स्वर्ग जानेमें जहाँ सांसारिक अन्य वस्तुयें छोड़ गये वहाँ इस चिन्ताके लिये भी उन्हें चिन्तित होकर न जाना पड़ा और आशा है कि वे अब बिना थकावट के मंजिले मकसूद पर पहुँच गये होंगे।

क्या समाचार है

धीरे-धीरे देशमें दैनिक—पत्र भी बहुत निकलने लगे लेकिन दैनिक पत्रोंसे भी इस पब्लिककी तृष्णा बुझनेकी अभी आशा नहीं की जा सकती। आप कहीं भी जाइये। प्रश्न वही, कहिये क्या समाचार है ?

आवश्यकता है कि देशके पत्राकार अभी थोड़ा और सोचें और शीघ्रही पब्लिकको सन्तुष्ट करनेके लिये घण्टा-पत्र, मिनट-पत्र एवं सेकिण्डपत्र निकालनेका आयोजन भी करें अन्यथा औरोंसे अधिक मुझे चिन्ता है कि सब कहिये क्या समाचार हैं पूछ पूछकर मेरी जान ले लेंगे।

खासकर अपने पड़ोसी पं० गीताकिशोरजीसे मैं बहुत डरता हूँ। मालूम होता है कि इनका जन्म ऐसे प्रश्न पूछनेही के लिये हुआ है। सबेरे जाइये, दोपहरको जाइये रातको बारह बजे जाइये इनके पास किसी भलेमानुससे यदि कुछ पूछनेके लिये है तो यही प्रश्न। उस दिन मैं तो कविता शुद्ध कराने गया और आपने तड़ाकसे सबसे पहिले यही प्रश्न कर दिया कि क्या समा-चार है ? मैंने नम्रताका पाठ बचपनसे पढ़ा है, परन्तु पाठकी सीमा होती है। फिर 'तुलसी-दास' ने भी लिखा है कि—

अतिशय रगड़ करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई॥

मैं तो मनुष्य हूँ। क्रोध आ ही गया। मैंने उसी क्षण उत्तर

दिया कि पण्डितजी आप विद्वान हैं । मैं आपका आदर करता हूँ लेकिन दुःख तब होता है जब गँवारोंकी कुछ बातें आपमें भी दृष्टि-गोचर होती हैं । 'मैं छिति जल पावक गगन समीरा' से बना हुआ आदमी हूँ न कि कोई कागजका और प्रेसका छपा हुआ अखबार । आप जरा सभ्यता भी सीखिये । बिना सभ्यताके आपका ज्ञान रद्दी कागजोंके भाव बिकनेके करीब आ रहा है।

पण्डितजी हँसने लगे । बोले इसमें नाराज होनेकी कौन सी बात है । सनातन धर्मका पालन करना कोई पाप नहीं है। किसीसे राजी खुशी पूछना कोई खोटा काम नहीं है।

मैंने कहा सो तो ठीक है, परन्तु बात कहनेका भी ढंग होता है। आप जानते हैं, मैं जब बीमार पड़ता हूँ तो डाक्टरको बुलानेसे पहले आपको बुलाता हूँ । आप सवेरही मुझे मिले थे । उस समय मैं हट्टा कट्टा सड़कपर चहल कदमी कर रहा था फिर सन्ध्याके समयही आपको यह भ्रम कैसे हुआ कि मैं राजी-खुसी से नहीं हूँ। दूसरे आपको यदि पूछनाही था तो राजी-खुशी ही पूछते आपने समाचार शब्दसे वाक्य सजाकर बुद्धिमानी नहीं की। मैं इस वाक्यसे अपनेको इस समय अपमानित समझता हूँ। मुझे मालूम होता है कि मैं कवि नहीं हूँ । बल्कि हूँ चौराहे पर खड़ा हुआ एक 'हाकर' और दूसरे लोगोंकी तरह आप भी मुझसे पूछ रहे हैं कि क्या समाचार है ?'

पण्डितजीने कहा—'ऐसेही समयोंपर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि देशकी दशा दिनपर दिन दयनीय होती जा रही है। तुम भलेमानुष होकर भी कवि नामसे पुकारे जानेमें अपमान नहीं समझते और कहिए क्या समाचार है, पूछनेसे ही तुम्हारा अपमान हो गया ।"

मैं परिडत गीताकिशोरजी की फिलासफी से हमेशा कायल हुआ हूँ । आज भी उन्होंने एक बात बे सिर पैरकी उड़ायी। भले मानुषको 'कवि' नामसे अपमानित हुआ समझना चाहिये यह बात मेरे लिए छायावादकी कविता हो गयी और जिसे समझना लाख विचार करनेपर भी मुझे असम्भवही जान पड़ा है। मैंने कहा "परिडतजी पहली बातसे पहले आप अपनी दूसरी बातको वापस लें अथवा आप सिद्ध करें कि कवि शब्द भी अपमान जनक है।"

वे मुस्कराये और बोले-'अब रास्तेपर आये हो । सिद्धान्तसे आदमीको हराया जा सकता है, समझाया जा सकता है लेकिन बिना सिद्धान्तके किसीसे बात करनेमें मैं भी अपना अपमान समझता हूँ। मैं मानता हूँ कि पहले कवि शब्द पवित्र था परन्तु यह शब्द अपवित्र क्यों और कैसे हुआ इसका भी एक इतिहास है। रामायणमें तुमने भी पढ़ा होगा कि 'तुलसी' ने रामायण जैसे कविता ग्रंथका निर्माण किया, परन्तु यह चौपाई क्यों लिखी 'कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ।' क्या तुमने विचार किया है कि एक प्रतिष्ठित और सच्चे कविने अपनेको 'कवि' कहलानेसे अपनी रक्षा क्यों की ?

मैं अभी 'हाँ नहीं' कुछ भी न कह पाया था कि गीताकिशोरजी आगे बढ़े। कहने लगे 'तुलसी' के जमानेमें कोई सेठ सिगरेट राम बीड़ी प्रसाद थे जिनका दियासलाईका कारखाना आज भी चल रहा है। उनके यहाँ यह नियम परंपरासे चला आ रहा था कि जब कोई उत्सव होता था तो भाँड़ वगैरह बुलाये जाते थे। इस बार फिर उनके एक लड़केका मुण्डन संस्कार होने वाला था। सहसा उनके हाथ कवि बैताल' की एक हस्त लिखित प्रति कहींसे लग गयी। इसी प्रतिमें उन्होंने एक स्थान पर पढ़ा कि—

कवि सबमें सिरमौर,
　　　　जगतमें चतुर कहावे।
कवि उत्सव के परे,
　　　　आग के छन्द सुनावे॥
कवि कविता लिखि देय,
　　　　स्यार हाथी ह्वै जावे।
कवि कविता पढ़ि देय,
　　　　पुत्र पण्डित ह्वै जावे॥
बैताल कहै विक्रम सुनो,
　　　　कविको जेल न दीजिये।
मूँडन-छेदन जब पड़ै,
　　　　कवि सम्मेलन कीजिये॥

सेठजीने सोचा—विचार तो सुन्दर है। इस बार भाँड़ न बुलाकर मैं कवि-सम्मेलन ही करूँगा। हुआ भी यही। मुण्डन संस्कारके दिन ही बृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन भी निमन्त्रण पत्रमें रखा गया। हमें ऐसा पता लगा है कि इसमें कविवर तुलसीदास भी आमन्त्रित किये गये थे। न जाने सेठजीके साथ उनका कैसा प्रेम था कि साधु होते हुए भी वे उनके यहाँ पहुँचे। कवि सम्मेलनोंके विरोधी तो वे थे ही, साथ ही नर-काव्यसे तो उनको और भी चिढ़ थी। कवि-सम्मेलनमें जितने कवि आये थे सभीमें तुलसीदासजीको इस बातका पता लगा कि वे अपने छन्द लड़केकी प्रशंसा ही में लिख लाये थे। वास्तवमें मजा भाँड़ोंसे भी अधिक आया और कवि-सम्मेलन भी धूम-धाम से समाप्त हुआ। पुरस्कारमें किसीको २१) दिये गये तो किसीको ११)। सेठजीने इतना खर्च किया कि कहते हैं कि जिन्होंने कविता भी न बनायी थी और 'उपनाम' आदिसे पता चल गया कि कवि हैं, उन्हें गंजी

गमछे और गुलूबन्द आदि पुरस्कारमें दिये गये। किन्तु यही कवि-सम्मेलन था जिसने कवि तुलसीदासको अपने कर्तव्यकी याद दिलायी। घर पहुँचते ही मानस में सबसे पहले उन्होंने 'कवि न होहु नहिं चतुर कहाऊँ' चौपाई जोड़ी और तब कमण्डल हाथसे नीचे रखा। रंक गाँवकी प्रतिमें कदाचित् उन्होंने टाइटिल पेजपर भी इस विषयका एक मोटो लिखा है। मैं मुँह बाये पं० गीता-किशोरजीका मुँह देखता रह गया।

मजबूर हूँ आदतसे

हर नसीहत मैं तेरी मानूँगा ऐ नासेह, पर एक।
दिलवरों को देखनेमें यह दिल मेरा मजबूर है।

न—जाने क्यों अपनेरामके दिलमें हसीनोंके लिये एक स्थान है। यह स्थान आज साल-दो-सालसे हो, सो बात नहीं है। बल्कि है उस समयसे, जबसे होश संभाला है। हाँ. तबमें और अबमें यदि कुछ अन्तर है, तो केवल यही कि तब यह स्थान एक कोठरी भरका था और अब पूरा एक हाल बन गया है।

कितने ही महानुभाव कह उठेंगे कि आपके दिलमें हसीनोंके लिये स्थान है, तो यहाँ कौन प्रवेश-निषेध की तख्ती लगी है। ठीक है, भाई साहब, लेकिन कम्बख्ती माफ हो, तो मैं एकबात कहूँगा। और वह यह कि मेरे और आपके दिलमें जो इनके लिए स्थान है, उसमें बड़ा अन्तर है। आप अपना काम करते रहते हैं, लेकिन कभी आफतका मारा कोई हसीन आ गया, तो स्थान दे दिया। परन्तु यहाँ तो चौबीस घण्टे उन्हींके स्वागतमें पलक-पाँवड़े बिछे रहते हैं। आँखें उस 'शम्मअ' को ढूँढ़ती ही रहती हैं—'जो बज्मकी हर चीजको परवाना बना दे।'

खैर! यह तो मैं अपने विषयसे दूर होता जा रहा हूँ। यदि सच सच पूछिये, तो मुझमें कोई इस प्रकारकी आदत नहीं है।

ऊपर जो शैर मैंने लिखा है वह तो केवल सजावटके लिए है। मेरा अभिप्राय तो यह था कि आवश्यकता आविष्कार की जननी तो है ही, परन्तु सबसे पहले आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। बिना उदाहरण अथवा प्रमाणके कोई बात कह देना गंवारू-पन होता है, अतः बातको इस प्रकार समझिये।

कल्पना कीजिये आप लीडरी फैसनमें चले जा रहे हैं, परन्तु पूर्व-जन्मके पापोंका परिणाम कहिये अथवा किसी प्रेमिकाका श्राप कहिये कि रास्तेमें दुर्घटना घट जाती है। आपके चप्पलका फीता टूट जाता है। अब 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है' सिद्धान्तके अनुसार होना तो यह चाहिये था कि आप सोचते कि देशमें अभी काफी सुधारोंकी आवश्यकता है। यद्यपि विदेशी कम्पनियोंने काफी मांग पूरी कर दी और अब कोई भी अपने हाथसे दाढ़ीतक बना सकता है, परन्तु कितने दुःखका विषय है कि चप्पलका फीता टूट जाय, तो अभी कोई अपने हाथसे नहीं ठीक कर सकता है! बस, इस प्रकारके आविष्कारके विषयमें ही आपको सोचना चाहिये था।

परन्तु नहीं। जैसा कि मैंने बताया है, सर्वप्रथम आवश्यकता आवश्यकताकी जननी है। चप्पलका फीता टूटते ही आपको आवश्यकता पड़ती है एक तुच्छ प्राणीकी, जिसे कांग्रेसी भाई अब 'हरिजन' के नामसे पुकारते हैं। आपकी आँखें अपने पासके सभी लोगोंको मोचीके रूपमें देखनेके लिये उतावली हो जाती हैं। राहगीर सभी मोची नहीं हुआ करते, अतः अब आप अविष्कार की कल्पना छोड़कर मोची ढूढ़ने लगते हैं।

एक दूसरा प्रमाण लीजिये। आज सबेरे आपने अभी चाय भी नहीं पी है कि एक उल्टा-सीधा कुछ न समझनेवाला परम गँवार आ धमकता है। एक घंटा किसी प्रकार बात-चीत करके

आप उसे टाल तो देते हैं, परन्तु अब आपको आवश्यकता पड़ती है दिमागी कमजोरीको दूर करनेके लिए आधा सेर दूधकी। एक कप चायके स्थानपर आधा सेर दूधका खर्च बहुत है, परन्तु आखिर दूसरा उपाय ही क्या है ? अब आपको आवश्यकता पड़ती है थोड़े सन्तोष की।

वास्तवमें किसीने बहुत ठीक कहा है कि आदमी आदतोंका एक बंडल है। मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ और शायद धोती, पायजामा, पैंट, हाफपैंट जो कमरसे कस लिए जाते हैं, उसका मतलब ही यह है कि आदतोंका बण्डल कहीं छूट न जाय। फिर महापुरुषोंका यह भी कहना है कि ये आदतें आदतें हैं। एक बार पड़ गईं तो फिर छूटती नहीं है, परन्तु मैं इस बातसे सहमत नहीं हूँ। आदतें छूट भी सकती हैं और नहीं भी छूट सकती हैं।

एक बारकी घटना है कि हम दो मित्र पानके बड़े शौकीन थे। एक दिन तै हुआ कि पान खानेकी आदत छोड़ देनी चाहिये। बहुत चेष्टा की गई, परन्तु जब आदत छूटनेके लक्षण न दिखाई पड़े, तो यह विचार किया गया कि कान पकड़कर प्रतिज्ञा की जाय और साथही आजसे यदि हम दोनोंमें कोई किसीको पान खाते देखे, तो एक चपत रसीद कर दे। मुझे जहाँ यह कहते हुये प्रसन्नता हो रही है कि मेरी पान खानेकी आदत उसी दिनसे छूट गई है, वहाँ यह कहते हुये दुःख भी होता है कि मित्र महोदय अभी पान खाये ही दिखाई पड़ते हैं। प्रथम दो बार उन्होंने माफी माँग ली थी कि यदि तीसरी बार देखना, तो तीनों चपतें एक साथ लगा लेना, अतः छोड़ दिया था, परन्तु अब वे तीसरी बार मेरे सामने पान खाकर आये नहीं। मुँह देखनेसे पता चलता है कि अभी उनकी आदत छूटी नहीं है, परन्तु मौकेसे

न मिले, तब तक कानूनमें आते नहीं। फिर भी इतना तो आप भी मानेंगे ही कि एक वह होते हैं जो आदत छोड़ देनेके भी आदी होते हैं, और दूसरे वे होते हैं जो मार खानेके अधिकारीसे भी बढ़कर मार खा भी लेते हैं परन्तु आदत नहीं छोड़ते।

सो यह तो हुई आदत छोड़नेकी बात, परन्तु मैं कहना यह चाहता हूँ कि आदतें जब पुरानी होती हैं, तो लाख कोशिश करने पर भी नहीं छूटती हैं। नीचे मैं कुछ आदतोंका जिक्र करता हूँ, जो सभी मुझमें हैं और रहेंगी। इसके लिये मैं मजबूर हूं और शायद इस जन्ममें छूटेंगी भी नहीं। आदतें ये हैं—

१—जब मुझे गन्धमार्जा‌की जरूरत महसूस होती है, मुझे आवश्यकता मालूम होती है किसी क्लबमें नाम लिखाने की।

२—वियोगमें संयोगकी अभिलाषा जब प्रबल हो उठती है, तो मुझे आवश्यकता मालूम होती है काम-शास्त्रकी पुस्तकोंकी।

३—कांग्रेसके किसी जुलूसमें शामिल होना होता है, तो इच्छा फड़फड़ाने लगती है एक खद्दरके कुर्ते और गांधी टोपीकी।

४—जब 'विलास' का प्रश्न सामने आता है, तो मुझे याद है 'मधुप' जीकी 'विरहणी व्रजांगना'।

५—लड़ाई करनेकी इच्छा होती है, तो जरूरत महसूस होती है नौकर की।

६—लेख अस्वीकृत होकर आता है तो आवश्यकता महसूस होती है अपने एक पत्रकी।

७—विद्वताकी धाक जमानेके लिए आवश्यकता पड़ती है गँवार समुदायकी।

८—रूपके सरोवरको देखकर इच्छा होती है स्नान करनेकी।

९—जब कोई गाली देता है, तो गुस्सा आता है अपने दुर्बल शरीरपर।

१०—किसी धनीको देखता हूं, तो इच्छा प्रबल हो उठती है कोई पुस्तक लिखकर समर्पण करनेकी।

११—कवि सम्मेलनका निमंत्रण मिलता है, तो अफसोस होता है अपने छोटे बालों पर।

१२—बिछी चारपाई देखता हूं, तो इच्छा हो आती है लेटनेकी।

१३—ओस अधिक पड़ती है, तो जरूरत जान पड़ती है लखनउवे छातेकी।

१४—लीडरीकी इच्छा होती है, तो तबियत जोर मारती है 'बाटा' कम्पनीके चप्पलकी।

१५—लेख किसी पत्रमें छप जाता है, तो आवश्यकता पड़ती है आप जैसे पाठकोंकी।

तालाबमें चारपाई

इस समय पण्डित जी के सामने दो गम्भीर विषय थे और दोनों ही पर विचार करना हमलोगोंसे भी बढ़कर उनका कर्तव्य था 'मेस' में खानेके समय जब-तब उन्हें नमक मिला हुआ पानी मिलता था। लेकिन उसमें ग्वाले की शरारत हो सकती थी और वास्तव में उसका कोई उपाय भी किया जा सकता था। यह प्रश्न एक तीसरा विषय था और अधिक विचारणीय भी नहीं था। परन्तु फिर भी एक अदना नौकर भी हमारे श्रद्धेय पण्डित-जीके साथ मजाक करे यह हमलोगोंके लिये कुछ कम शोकका विषय नहीं था। और नहीं तो कमसे कम पण्डितजीके सामने इसपर शोक प्रस्ताव पास करना आवश्यक ही था।

शेष जो दो और गम्भीर विषय थे उनपर काफी बहस हुई। पण्डितजी उनमें भूत-प्रेतोंकी कारस्तानी समझते थे, अतः उन्हें न तो इसपर विचार करनेका साहस ही होता था और न अन्य विचारोंके आगे इनके लिये अवकाश ही था। हाँ, हमलोग भी कुछ तै न कर पायें यह शर्मकी बात थी और वास्तवमें श्रद्धेय माननेपर पानी फेरना था।

मैंने गम्भीर होकर कहा—"पण्डितजी जब आपकी चारपाई तालाबमें ले जाई गई थी उस समय आप वास्तवमें थे कहाँ? आप तो सिनेमा वगैरह भी नहीं देखने जाते? और कदाचित्

गये भी हों तो यह घटना रातके दो बजेकी है। आपको वापस आ जाना चाहिये था ?"

पण्डितजीने बिगड़कर कहा—"आप भी कैसी बातें कर रहे हैं। मैं चारपाईमें तो था ही। चारपाईसे उठकर और घुटनोंतक पानीमें भंझाकर तालाबके बाहर निकला हूं। आपलोगोंको दूसरी बार यहाँसे ले गया हूं और तब चारपाई निकालकर लाया हूँ।

प्रश्न और भी गम्भीर हो गया। पण्डितजीकी श्रद्धाके सामने इधर अपनी हँसीपर भी क्रोध आ रहा था और उधर मित्रोंके इशारों पर भी। इतनेमें ही बीचमें हमारी बगलमें बैठे हुए एक मित्र महोदयने कहा—"तब तो पण्डितजी दो ही बातें हो सकती हैं या तो आप सोनेमें कुम्भकर्णके भी कान काटते हैं और इसी-लिये उतना सब कुछ हो जानेपर भी आप ले जाने वालोंके कन्धोंपर बिना चूं किये चले गये, अथवा यह साफ भूतों और प्रेतोंका ही करिश्मा है। मेरे एक सम्बन्धीने जो इस बोर्डिङ्गमें रह चुके हैं कहा था कि इस बोर्डिङ्गमें भूतों और प्रेतोंका बहुत पुराना अड्डा है। मैंने आजतक उनकी बातोंको सच नहीं माना था, परन्तु आपकी यह घटना मुझे विवश कर रही है। आपकी बातपर अगर विश्वास करूं तो इसका अर्थ ही यह हुआ कि इस बोर्डिङ्गमें भूत और प्रेत अवश्य ही रहते हैं।"

पण्डितजी चुप रहे। मित्र महोदय फिर बोले, 'अच्छा बेहतर है कि दो चार दिन ताड़ा जाय कि आखिर इसमें किसी दूसरेकी तो शरारत नहीं है और यदि रहस्य न खुले तो वार्डन साहेबके सामने इस घटनाको पेश किया जाय और इस बोर्डिङ्गको नमस्कार करके चलते बनें। आर्य-समाजपर विश्वास है, लेकिन उनके बोर्डिङ्गमें विश्वास करके तालाबके भीतर डूबकर हमलोग मरें, यह किसीको स्वीकार नहीं है। क्यों पण्डितजी ?

पण्डितजीने कहा - ठीक है। परन्तु यह तो है कि ऐसी घटना रोज रोज तो होगी नहीं। अपने पहिले गम्भीर विचार-की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा -'सोते समय मेरे मुँहपर मिट्टी झोंक जानेवाले ने ही लगातार तीन दिन शरारत नहीं की। उन तीन दिनोंमें किसी दिन भी ऐसी कोई बात नहीं हुई दूसरी बारकी शरारत ९ रोज बाद और तीसरी बारकी उसके १४ रोज बाद परसों हुई मिट्टीकी कोई वैसी बात नहीं है, परन्तु चार-पाईपानीमें रख आना विचित्र सा...सा...है।

उन्हीं मित्र महोदयने कहा "और फिर यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि चारपाई दूसरे दिन इतने ही गड्ढेमें रखी जायगी। सम्भव है दूसरे दिन अधिक गहरेमें छोड़ें, अथवा रस्सी या जादूसे फाँसकर आपको बाँध भी दें। भला तब हमलोग तो आपका पता भी न पायेंगे और यदि आपके घरवाले आकर पूछें तो कोई उत्तर भी न दे पावेंगे।

खैर आपके कथनानुसार आज ऐसा घटना घटेगी नहीं और हमलोगोंका भी ध्यान है कि वास्तवमें ऐसी बातें लगातार नहीं होतीं। इसलिये स्कूल चलें। आज शनिवार है। कल रविवारकी छुट्टीमें सभी स्कीम ठीक कर ली जायगी। आशा है कलसे कम एक मासके भीतर तो इस रहस्यका पता लग ही जायगा।

पण्डितजीने कहा—"अच्छी बात है। कल ही इसपर विचार किया जाय।"

तालाबका पानी थोड़े ही कदमोंपर था, परन्तु आज मेरा कंधा फटा जा रहा था। बात यह हुई कि मैंने सोचा आज पण्डितजी अभी चारपाई ले जानेवालोंसे निश्चिन्त हैं, अतः एक बार हाथ और मार देना चाहिये, परन्तु आज पिछली रात वाले साथी थे नहीं। तीनों ही शहरके पास ही की देहातोंके

देहाती मुचण्डे थे, अतः रविवार पड़ जानेके कारण आज शनिवारको ही घर रवाना हो गये थे। मैं किसी प्रकार साहस बटोर कर बढ़ रहा था, परन्तु न मालूम क्यों सहसा चारपाई हिली और कुछ घिघियाई हुई आवाज भी कानोंमें पड़ी। कलवाले लड़के यदि साथ होते तब तो यदि हम लोग चारपाई फेंकते भी तो पानीके इधर कदापि न गिरती, परन्तु अन्य सभी रङ्गरूट ही थे। जल्दीमें ट्रेनिंग भी न हो सकी। जो कुछ किया था वही बहुत था। तीन कन्धोंसे चारपाई छूट चुकी थी। मेरा कन्धा अभी भी पण्डितजीके साथ हमदर्दी दिखा रहा था, परन्तु न जाने पण्डितजी स्वयं ही क्यों लुढ़क पड़े। मुझे उन्होंने देखा या नहीं, इसे वे जानें परन्तु मैंने यह इच्छा कदापि नहीं की कि वे इस अकेले भूतको देख लें और डरकर मर जायँ। शीघ्रसे शीघ्र मैंने चारपाई उलट दी और मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे अपनी चारपाईतक पहुँचनेके पहिले पण्डितजी बिस्तरे और चारपाईके नीचेसे सिर न निकाल सके होंगे।

मुझे याद है कि पण्डितजीने उसी वक्त आकर मुझसे सारा किस्सा बताया था, परन्तु मेरे जानेपर वहाँ किसीका पता न मिला केवल चारपाई और बिस्तर पड़े थे।

इसके उपरान्त कई दिनतक कोई ऐसी घटना नहीं घटी। पंडितजीसे कह भी दिया गया कि आप जगा अधिक न सोया करें और चारपाईमें बगैर कुछ दूर गये ही शोर मचा दिया करें। भूतोंके बाप भी होंगे तो हमलोगोंसे भगकर न जाने पायेंगे।

बहुत दिनके बाद आज फिर स्कीम सोची गयी। पण्डितजी इधर कुछ दिनोंसे अब निश्चिन्त होते जा रहे थे। रातका यही एक बजा होगा, कि पण्डितजीकी चारपाई हमलोगों के कन्धोंपर आ गयी। साथी पुराने मिले थे। बहुत दिनके बाद मौका

मिला था ऐसा मालूम होता कि मानों पण्डितजी चारपाईमें हैं ही नहीं। चारपाई भी आज न तो हिली और न कुछ हिलनेके लक्षण ही मालूम हुए। तालाब आ गया। पानीमें घुसनेमें आवाज बिल्कुल न हो यह तो हमलोगोंका खास गुण था। घुटनोंतक जानेके बाद चारपाई रख दी गयी।

लेकिन पण्डितजी शायद तालाब तक आनेके पहिले ही जग चुके थे तभी तो जैसे ही चारपाई रखी गयी वे खड़े हुए और पानीमें कूद पड़े। भागनेवाले पहिले ही रवाना हो चुके थे, परन्तु पण्डितजी शायद आज स्वयं भूतोंसे मोरचा लेनेका प्रण कर चुके थे, तभी तो उन्होंने सबसे पीछे रह गये मुझी को अपनी बाहोंके भीतर जकड़ लिया।

मैंने डपटकर कहा—"पण्डितजी, आप क्या कर रहे हैं। इतने दिन बाद आज शिकार हाथ आया तो आप मुझे रोककर सब मट्टी कर रहे हैं। जल्दी छोड़िये मैं अभी इनको पकड़ सकता हूँ। मैं आपकी चारपाईके पीछे ही पीछे आया था।

पण्डितजी सन्न रह गये। कहने लगे—"अरे। तब तो बड़ी भूल हुई। मुझे यह मालूम ही नहीं हुआ कि आप साथ हो हैं। मैं रास्तेमें ही जग चुका था लेकिन हिला नहीं कि उस दिनकी तरह ऊपर ही से छोड़कर न भग जायँ और इस लिये जब चारपाई रख दी तब मैं खड़ा हुआ।"

मैंने कहा—"आपने रास्तेमें न हिलकर जितनी बुद्धिमानी की उतनी ही मुझे पकड़कर बेवकूफी। अब ऐसा मौका न मालूम कब आये ?"

पण्डितजीने उदास होकर कहा—"नहीं अब मैं कल ही बोर्डिङ्ग छोड़ दूंगा।"

मैंने कहा यदि इस बार हमारे कहनेसे रुक जायँ तो मैं कसम खाता हूँ कि आपकी चारपाई कोई यहाँ न ला सकेगा।

पण्डितजीने बोर्डिङ्ग नहीं छोड़ा और अब उनकी चारपाई भी बहुत दिनोंसे तालाबमें नहीं गयी।

अथका-अंक

साहित्यिक जगतको मैं अपना परिचय किन शब्दोंमें दूँ। कवि होते हुए भी मैंने अभीतक अपने परिचयपर कोई भी छन्द नहीं लिखा। गद्यमें परिचय दूँ तो फिर मेरे कवि होनेमें सम्भवतः सन्देह होने लगेगा। अतः मैं अपना परिचय ही नहीं दूँगा। भविष्यमें भी अपना परिचय नहीं लिखूँगा, क्योंकि परिचय लिख देनेमें वह खूबी नहीं है जो न लिखनेमें है। मेरी इच्छा भी यही है कि मेरे बाद भावी साहित्यिक मेरा परिचय पानेके लिये उसी प्रकार प्रयत्न करें जिस प्रकार वे कविवर तुलसीका परिचय पानेके लिये करते हैं। कोई कहता है वे राजापुरमें रहते थे तो कोई कहताहै वे रङ्क गांवमें रहते थे। मैं भी यही चाहता हूं कि मेरे निवास स्थानपर आगे चलकर साहित्यिक रिसर्च करें, अपने-अपने प्रमाण पेश करें, गाली-गलौज हो और लाठी चले।

इस लेखके लिए मैं थोड़ा-सा अपना परिचय अवश्य दूँगा। मैं हिन्दी साहित्यका बहुत पुराना लेखक हूँ। समय जानना चाहें तो यह कहूँगा कि उन दिनोंसे जब लेखक और प्रकाशक पृथक-पृथक थे। न तो लेखकोंने अपने लेटर-पैडमें प्रकाशक लिखाया था और न प्रकाशकोंनें स्वयं पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया था। एक बात और कहूंगा और वह यह है कि मैं आज कई वर्षों से

रामायण पर रिसर्च कर रहा हूँ। आप लोगोंने पत्रोंमें यह सूचना अवश्य पढ़ी होगी कि भारतमें एक व्यक्ति ऐसा भी है जो केवल गुड़, गुर्च और काली मिर्च खाकर ही रामायणकी रिसर्च कर रहा है। सच बतलाता हूँ वह व्यक्ति मेरे सिवा और कोई नहीं है। तब मैं विश्वास करता हूँ कि आपलोग मुझे जानते होंगे। और जानते ही क्यों यदि देखा होगा तो पहिचानते भी होंगे।

आपलोग सोचेंगे कि इस रिसर्चके स्कालरने अभी तक रामायणपर कुछ लिखा क्यों नहीं। भाई, बात यह थी कि मेरी रिसर्च अभी तक पूरी नहीं हुई। लेकिन इधर रामायण पर सभी अपनी-अपनी रिसर्चकी खूबी दिखा रहे हैं। अतएव मुझसे भी न रहा गया और रहा भी कैसे जाता जब हस्त-लिखित प्रति पा गया हूँ।

आप ही बताइये यह देशका दुर्भाग्य नहीं है तो और क्या है कि हमारे यहाँ रिसर्चका ठेका प्रकाशकोंने ले लिया है। जब इन लोगों को लेखक बननेका शौक चर्राता है तो और तो क्या करेंगे। रामायण इधर-उधर करके छाप डालते हैं। भूमिकामें लिख देते हैं 'हमें बड़ा दुःख है कि आज तक किसी रामायणमें शुद्ध पाठ नहीं मिलता अतः मैंने छान-बीन कर यह तुलसीकी कृती साहित्य संसारके आगे लानेकी धृष्टता की है।' हमें हर्ष यही जानकर होता है कि भला यह अपनी धृष्टता समझते तो हैं। बस, अक्लमन्दको इशारा काफी है। आप भी समझ जाइये। इसी प्रकार इन धुरन्धर प्रकाशकोंको कभी संक्षिप्त रामायणका अभाव खटकता है, कभी टीकामें दोष होनेके अभाव खटकते हैं। किसी चवन्नी फरमेपर पुस्तक लिखनेवाले लेखक से यदि भाषामें महाभारत लिखा लिया तो उसे छापकर ये साहित्यके एक बड़े अभावकी पूर्ति कर प्रसन्न होते हैं। अभी हालमें ऐसी ही एक

महाभारतकी पुस्तक देखनेमें आई जिसकी भूमिकामें लिखा था कि अमुकजीने घटनाओंके तारतम्य ठीक करनेमें जो हमारी सहायता की है इसके लिए मैं किन शब्दोंमें धन्यवाद दूं। मैं लेखक और अमुकजी दोनोंको जानता था। सोचा प्रसन्नता की बात है कि अभी तक महाभारतकी घटनाओंका जो तारतम्य ठीक न हुआ था वह अमुकजीने ठीक तो कर दिया। प्रकाशकोंकी महिमा ही अपार है। बुद्धू अगर वेद व्यासका काम कर डालते हैं तो आश्चर्य क्या?

खैर! जाने दीजिये। मैं साहित्य-संसारके आगे अभी हस्त-लिखित प्रति पूर्ण-रूपसे तो नहीं रखूंगा परन्तु इधर उधरकी दो चार चौपाइयाँ नमूनाके तौरपर पेश करता हूँ। यदि मनबहलाव हो तो अपने रामके नाम पत्र लिखना। रामायण शीघ्र ही आपके कर कमलोंमें पहुँचा दी जायगी। चौपाइयाँ किसी क्रमसे नहीं हैं। प्रकाश क्षेपकोंका भी नमूना मद्‌नजर है। हाँ, इतना आप लोगों को और बतला देना चाहता हूँ कि एक बार इस रामायणका दर्शन मैंने महात्मा गान्धीको करा दिया था तबसे वे इस रामा-यण पर और साथही साथ अपने रामपर बड़ी श्रद्धा करने लगे हैं—यहाँतक कि उसकी स्वीकृति भी इसबार उन्होंने देनेकी कृपा की है। और रोज दिनमें तीन बार उनके पत्र आया करते हैं कि मैं अब प्रतिकी प्रति-लिपि कराकर उनके हवाले कर दूँ, क्योंकि वे इसका नित्य नियमसे पाठ करना चाहते हैं।

तिरछी टेढ़ी सीस की, गाँधी कैप सुधारि।
पग सिकोरि कर जोरि कै, पाठ करौं झखमारि॥

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।
रही भीर नहिं मिली मिठाई॥
जो बालक कह तोतरि बाता।

गुरुजन हरसि खरीदें छाता ॥
निज कवित्त केहि लाग न नीका।
तापर रोष मिटायहुं जी का ॥
जे पर भनित सुनत हरसाहीं।
ते नर मिलहिं न हिन्दी माहीं ॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहहुँ अस दाँत निपोरे ॥
जदपि कबित—रस एकहु नाहीं।
तदपि बहुत पइहौ यहि माहीं ॥

× × ×

जे जनमें कलिकाल कराला।
वृथा करहिं अब कागद काला ॥
चलत कुपंथ वेद-मग छाँड़े।
निसि दिन उनहिं रहैं हम लाड़े ॥
वंचक भगत कहाइ देस के।
घोड़े देखन जाहिं 'रेस' के ॥
तिन्ह गहँ रेख प्रथम जग मोरी।
कबिता थोरी कीन्हीं चोरी ॥
जो अपने अवगुन सब कहऊँ।
घर तजि केहि के घर महँ रहऊँ ॥
ताते मैं अति अलप बखाने।
बाकी सब जानिहैं सयाने ॥
कवि न होहुँ नहिं चतुर कहाऊँ।
केवल कविता धार—बहाऊँ ॥

\+ \+ \+

गोहिं उपदेसि गये पितु नीका।
करेहु पूत मानस की टीका॥
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा।
याते सब की सम्मति लीन्हा॥
'टीका' सम कछु सुखद नहिं, जो नर कर विस्तारा।
सम्मति 'गांधी-गौड़' की, पावहि बिनहिं प्रयास॥

\+ + +

काहु न कोइ सुख दुख कर दाता।
निसदिन कहहिं बैंक के खाता॥

\+ + +

कर्म-प्रधान विश्व करि राखा।
सोचि समुझि निज मन अति माखा॥

\+ + +

कलि, पाखंड, प्रचार, प्रबल पाप पॉवर पतित।
तुलसी उभय अधार, नारि एक सुरसरि सलिल॥

\+ + +

बिनु कलंगी, बिनु पंख के, कागा बनते मोर।
नौकरशाही करि कृपा, जब चितवै जेहि ओर॥
रायबहादुर भा छन माहीं।
श्री सरकार द्रवैं जेहि पाहीं॥

\+ + +

कमठ पीठि जामहिं बरु बारा।
बिनु निजु पत्र न होय उबारा॥
फूलहिं नभ बरु बहु विधि फूला।
दलबन्दी बिनु मिलइ न झूला॥
तृषा जाइ बरु मृग जल-पाना।
मिलइ न बिना गुण्डई बाना॥
अन्धकार बरु ससिहिं नसावइ।
बिनु फतवा नहिं आदर पावइ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई।
धूर्त बने बिनु लखै न कोई॥

\+ + +

तात तीनि अति प्रबल खल, जानहु उनके नाम।
तिनके कारन देस का, रुका पड़ा सब काम॥

\+ + +

घन फागुन महँ बरसा करहीं।
बचा देश का दाना हरहीं॥

\+ + +

कवि के बचन प्रतीत न जेही।
ज्ञानी पुरुष कहैं हम तेहीं॥
जब जब होय धरम की हानी।
तब तब पुरिखा पावैं पानी॥

\+ X X

एक दिवस पूछेउ सम्पाती।
'लोकल सेल' बढ़ै केहि भाँती॥

× + +

जड़ चेतन गुन-दोष मय, बिरच कौन करतार।
'शेक हैंड' हित घूमती, मिस सब बिनु भरतार॥

+ + +

देह धरे कर यह फल भाई।
रुपिया संचिय लाज बिहाई॥
सोइ गुनज्ञ, सोई बड़ भागी।
जो निस-दिन रुपिया अनुरागी॥
सोइ सरबज्ञ, तज्ञ सोइ पण्डित।
सोइ गुन गृह बिज्ञान अखण्डित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई।
जाके घर महँ रुपिया होई॥

× ×

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी।
कोउ इक सच्चा खद्दर धारी॥
साहित्यिक कोटिक महँ कोई।
जाके कछु न चुरी लत होई॥
ह्वै निसपच्छ भले सब कहहीं।
मौलिक मैटर बिरले लिखहीं॥
हठ करि बृथा मझावहु पानी।

दुरलभ अब सम्पादक ज्ञानी ॥
सुनु खगेश कलिकाल महँ, प्रेस-पत्र पाखण्ड ।
कवि लेखक हैं मूढ़ पै, व्यापि रहे ब्रह्माण्ड ॥

\+ + +

करहु जाय जेहिका जो भावा ।
छेदि कीन्ह हम जेहिमा खावा ॥

\+ + +

बन्दउँ दोऊ गेंद, भव-बारिध बोहित सरिस ।
जिन्हहिं न सपनेहु खेद, कर-स्टिक की चोट सहि ॥
अतुलित महिमा गेंद की, तुलसी किये विचार ।
जो निन्दत निन्दित भयो, समुझै नहीं गँवार ॥

\+ + +

पण्डित सोइ जो गाल बजावा ।
लेखक सोइ जो नाम छपावा ॥
नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं ।
मुख बिहँसै दृग आँसू बहहीं ॥

\+ + +

बन्दउँ सन्त समान चित, चित लेटे जम्हुहाँइ ।
राम भजन चेला करैं, अपने को अघुवाँइ ॥

\+ + +

एक दिवस अक्टूबर माहीं।
तिथि-त्योहार आदि कछु नाहीं ॥
महिला-कान्फ्रेन्स तुम गयऊ।
इहाँ हृदय मम व्याकुल भयऊ॥
सोचेउ समय कवन विधि काटौं
पहिरौं सिल्क कि खद्दर डाटौं ॥
तब लगि हाकर भेस बनाये।
लिए हैंडबिल नारद आये॥
बोले "नाथ न अवसर खोइय।
लेट भये फिर भेंट न होइय॥
आजु फिल्म यह अन्तिम बारा।
चूके खेल बिगरिहैं सारा॥
रहिय न फिल्म सोच रहि जइहैं।
को जाने फिरि कोऊ लइहैं॥
हम तो यहै सत्य करि जाने।
समय चूकि फिरि का पछताने॥

\+ + +

याते पढ़िके हैण्डबिल, कहहु हृदय की बात।
होय मौन मत विषस तौ, लावहुँ कलम दवात॥"
उमा कही जब नारद ऐसी।
फिरी बुद्धि रही भावी जैसी॥
कहेउ न देर वृथा तब करहू।
भेस बनाय पंथ अब धरहू॥

×× ++

उमा ! सन्त की यही बड़ाई ।
खाय, पियै, लेटै अँगड़ाई ॥

++ ++

बरु भल बास नरक कर ताता ।
कारि नारि जनि देय बिधाता ॥

विज्ञापन-विनोद

'तुलसी, मैटर छाँड़ि कै, विज्ञापनहिं बटोरु।
धन कुबेरको जो चहसि, यहै पोटरी छोरु॥
विज्ञापन अवलम्बु बिनु, पत्र चलन की आस।
'तुलसी' बारिद-बुन्द गहि, चाहत उड़न अकास॥
विज्ञापन मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' जो निज पत्रका, नाम चहै उजियार॥
भूलि न सपनेहुँ महँ करै, घाटा प्रेस प्रवेस।
विज्ञापन छापत मिटत, 'तुलसी' पत्र-कलेस॥
विज्ञापन साबुनहुका, सकल सुमंगल-कंद।
छापत करतल बैंक-चेक, दिनु दिनु परमानन्द॥
'तुलसी' साथी पत्रके, सहित विवेक अनेक।
अहित यही 'मिस्टेक' है, विज्ञापन बल एक॥
'तुलसी' जाके होयगी, अन्तर-बाहर दीठि।
विज्ञापन-एजेण्टको, सो कि देइगो पीठि॥
विज्ञापन-तरु परिहरत, सेवत मैटर-ठूंठ।
स्वारथ परमारथ चहै, सकल मनोरथ झूंठ॥
विज्ञापन तजि पत्रके, ठाटहिं नाना ठाट।
'तुलसी' तिनके प्रेम से, जइहैं बारह बाट॥
बिनु विज्ञापन पत्रका, चहै होय कल्यान।
ज्ञानवन्त अपि सोइ नर, पसु बिनु पूंछ बिखान॥
नातो-नाते पत्रके, सुनहु सकल सर्वेण्ट।
'तुलसी' मांगत जोरि कर, एड वर-टाइज-मेन्ट॥

सबै कहावत पत्र के, सबै पत्रकी आस।
विज्ञापन जा पत्रमें, ग्राहक तुलसीदास॥
'तुलसी'सो अति चतुरता, विज्ञापन महँ लीन्ह।
प्रेस पाय इक पत्र तौ, काढ़त सबै प्रवीन॥
'तुलसी' जो पै सीस तव, नहीं विज्ञापन-छत्र।
प्रेस–द्वार घाटो खड़ो मांगत तेरो पत्र॥
दै त्रिभुवन 'न्यूज' सब, देखि लेहु किन कोय।
'तुलसी घाटा ना मिटै, विधि सम्पादक होय॥
बिगरी तेरे पत्र की, सुधरै अबहीं आजु।
विज्ञापन लहि प्रेम सन मैटर बिच-बिच साजु॥
"मैटर-मैटर" कहसि नित, तूको? कहुँ नित नाम।
जो मैनेजर पत्रको, तोहिं बिधाता बाम॥
प्रेस-पत्र कीन्हें जु सठ, बहुरि न करु मिस्टेक'।
"तुलसी तोसे दीन कहँ, विज्ञापन बल एक॥
विज्ञापन हित नीति तजि, कीन्हें विविध उपाय।
लहेहु लाभ तिन पत्रके, अजहुँ रहे सुख पाय॥
मैटरहूते अधिक जेहि, विज्ञापन सों नेह।
"सर्वस" ताके प्रेस महँ, धनि तुलसी तव देह॥
विज्ञापन तो है नहीं, लेख करोरिन होहिं।
चन्दा ताहि पठाइबो, उचित न तुलसी तोहिं॥
'तुलसी' जे मैटर चहहिं, विज्ञापन धन खोय।
ट्रेडिल मसि मुँह लागिहैं, मिटिहि न मरिहैं धोय॥

मैं काढ़ि पत्र अनेक देखेउँ, प्रेस लाइन साँपिनी।
कैसेहु सँपेरा होय, अवसर पाय, काटिसि पापिनी॥
तेहिसे सुनहु सब सन्त जन, मन होय तो मानो कही।
जो 'बाहसी' यह रची, समझहु औषधी पक्की सही॥

जब होग भावी का करै कोउ, अंध दसकन्धहु भयउ।
सब प्रेस काढ़ेन पत्र यहिते, पत्रका धन्धहु गयउ॥
विश्वास करि जो 'बाइसी' यह धारिहैं उर भाव से।
भव-सिन्धु करिहैं पार, तुलसीदास कागद-नाव से॥

प्रेस पत्रके जगत महँ उमा चहै जो मान।
भाव सहित यह 'बाइसी' करै श्रवन-पुट पान॥
सुनहु सकल गुरु सन्तजन, डोन्टलूज योर चांस।
कसहु कसौटी पत्र यह, चन्दा दो एडवांस॥

× ×

बन्दौं कवि सम्पादक चरना।
दुख प्रद उभय बीच कछु बरना॥
पाये एक समय ले लेहीं।
मिलत एक ग्राहक करि लेहीं॥
चेयर एडीटर मनिगन जोती।
बैठत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
ईस दीन्ह कस भली मंजूरी।
कीरति रही नगर भरि पूरी॥

× ×

रहा अजामिल भूसुर पापी।
छापत रहा लेख बिन कापी॥
रही कतरनो तासु अधारा।
समुझत मन दुख होत अपारा॥

कसरत कालम आयु खुटानी।
यही सोच मन भई गलानी॥
'जी' निज होइ प्रगटी कलिकाला।
जस प्रयाग आई मधुशाला॥

× ×

हेडिंग बदलि घुमाय कर, काटि कटिङ्ग हम लीन्ह।
अपने चलत न आजु लग, नाम पत्र कहँ दीन्ह॥
जब कछु पत्र लिखेन भरि ताना।
कछु दिन छापा लेख पुराना॥

× ×

अनुचित बन्धु न मानब मोरा।
मैटर माँहि उपचार न थोरा॥
कहँ लगि रहिय कहहु मन मारे।
"ब्लैक बर्ड" पेन हाथ हमारे॥
अमित छन्द बुक-पोस्ट लहि, रहेहुँ सदा अनजान।
रचि रचना फिरि फिरि लिखत, नीच को कविन समान॥

× ×

चित्र कूटके घाट महँ, भई पत्रनकी भीर।
तुलसीदास कविता करहिं, लेख लिखे रघुबीर॥

× ×

भूप सहस दस एकहि बारा।
ढोवन लगे ईंट अरु गारा॥
हनुमत कहेउ हैंडबिल पेखी।
मातु सिनेमा आवहुँ देखी॥
हाउस कवन नगर महँ नीका।
कहहु आजु सोइ भावत जीका॥
मोटर चढ़े विभीषन आये।
देखि पवन सुत अति हर्षाये॥
पुनि पुनि ताके कान्धे चढ़ेऊ।
छीनि साइकिल आगे बढ़ेऊ॥

\+ \+

बन्दहुँ गुरु-पद पदुम परागा।
कुरता सियत न टूटहि धागा॥

× ×

जेहिका जेहिपर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत नोट करि लेहू॥

× ×

लछिमन देखहुँ मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
सम्पादक हरषहिं यथा सुन्दर मैटर देखि॥
घन घमण्ड घन गरजत घोरा।
लेख हीन डरपत मन मोरा॥

दामिनि दमकि रही घन माहीं।
कवि कै कलम जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि नियराये।
मैनेजर जिमि चन्दा पाये॥

बुन्द, अघात सहहिं गिरि कैसे।
खोटे बचन क्लर्क सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चली तोराई।
लिखि कविता जिमि कवि इतराई॥

भूमि परत भा डाबर पानी।
जनु स्याही ट्रेडिल लपटानी॥
सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा।
जिमि मैटर आफिस मँह आवा॥

सरिता जल जलनिधि मँह जाई।
होय अचल जिमि कवि कछु पाई॥

हरित भूमि तृन संकुलित, समुझि परइ नहिं पन्थ।
जिमि एजन्टन सों कवौं, मिलत न सुन्दर ग्रन्थ॥
सब कर अपजसु बरनि कै, भयउ चहत अब मौन।
कहं लगि केहि की को कहै, उल्टी बहिगै पौन॥

\+ \+

❀ समाप्त ❀